योगविद्या

वर्ष 14 अंक 1
जनवरी 2025

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2025

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प : (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)
Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट: 2024 के वर्षान्त कार्यक्रम

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

सेवा

अच्छा कार्य कभी व्यर्थ नहीं जाता। यह हृदय को पवित्र करता है। सारे विश्व की भलाई के लिए सेवा कार्य कीजिए। जितनी भी भलाई आप जिस भी तरीके से, जितने भी लोगों के लिए, जितने भी स्थानों पर, जिस भी समय, जितनी भी क्षमता, प्रेम, रुचि और उत्साह से, एवं जब तक कर सकें, कीजिए।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 14 अंक 1 जनवरी 2025
(प्रकाशन का 63 वाँ वर्ष)

विषय सूची

2 नव वर्ष सन्देश
3 द्वादश दिव्य गुण
4 सेवा के सूत्र
5 सेवा का मूल्य
7 व्यावहारिक वेदान्त
11 सेवा योग
18 सेवा, करुणा और प्रेम
27 योग, भक्ति और सेवा
32 गुरु-सेवा
39 सेवा ध्यान से श्रेष्ठ है
41 प्रार्थना या सेवा
45 योग की परिणति – सेवा, प्रेम एवं दान

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

नव वर्ष सन्देश

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

नव वर्ष 2025 के लिए मेरा संदेश है कि आप स्वस्थ, मजबूत और सकारात्मक संबंध विकसित करें। यह हर मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए। आप सभी मजबूत, सकारात्मक संबंध विकसित करने का प्रयास करें और इस सजगता को चारों ओर फैलने दें। आज की दुनिया में व्याप्त संघर्ष और चिंता से बाहर निकलने का एकमात्र तरीका है किसी ऐसी चीज से जुड़ना जो सकारात्मक और उत्थानकारक हो, सहायक और संतुष्टिदायक हो।

जो उत्थानकारी, सकारात्मक, सहायक और संतुष्टिदायक है, वह है सकारात्मक संबंध, जिसे हम अपने परिवार, समाज, मित्रों-सम्बन्धियों, मानवता और समस्त संसार के साथ विकसित कर सकते हैं। तभी हम सद्भाव, शांति और खुशी की उम्मीद कर सकते हैं। जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण रखना निश्चित रूप से चुनौतीपूर्ण है, और अपने जीवन को सुंदर बनाने के लिए एक रचनात्मक प्रक्रिया से गुजरना और भी चुनौतीपूर्ण है।

इन प्रयासों के अभाव में अंधकार ही अंधकार होगा। अंधकार से लड़ने का एकमात्र तरीका है अपने जीवन में एक चिंगारी लाना। एक चिंगारी दीपक जलाकर अंधेरे को रोशन कर सकती है। हम या आप दीपक नहीं बन सकते, फिर भी हम माचिस जलाकर चिंगारी जरूर पैदा कर सकते हैं। हम प्रार्थना कर सकते हैं कि यह चिंगारी एक जाज्वल्यमान ज्योति बन जाए। स्वयं और सभी के भीतर इस जीवन-ज्योति की सजगता और सम्मान रखकर, ज्योतिर्मय पथ पर चलते हुए हम सबके साथ एक सकारात्मक संबंध विकसित कर सकते हैं।

द्वादश दिव्य गुण

सन् 2024 में चातुर्मास के दौरान स्वामी निरंजनानंद जी ने *गुरु चरित्र* प्रस्तुत किया, जो ब्रह्मविद्या गुरुओं की परंपरा और विशेष रूप से हमारे अपने गुरुओं की परंपरा को समर्पित सत्संगों की एक शृंखला थी। इन सत्संगों में स्वामीजी ने उन द्वादश अद्वितीय गुणों के बारे में चर्चा की, जिन्हें श्री स्वामी शिवानंद जी ने अपने जीवन के हर पल जीते हुए व्यावहारिक अद्वैत वेदांत का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया।

वर्ष 2025 में *योगविद्या* पत्रिका सत्यानंद योग परंपरा के गुरुओं की वाणी के माध्यम से इन बारह गुणों को अलग-अलग दृष्टिकोणों से प्रस्तुत करेगी। ये दिव्य गुण हैं – सेवा, धर्म, विश्व प्रेम, वैराग्य, तपस्या, योग, ध्यान, आत्मविचार, सकारात्मक चिंतन, संतुलित जीवन, श्रद्धा और भक्ति। हम आशा और प्रार्थना करते हैं कि हर महीने सभी आध्यात्मिक साधकों को इन गुणों को जीने और अभिव्यक्त करने की प्रेरणा मिले। ऐसा करके हम श्री स्वामी शिवानद जी, श्री स्वामी सत्यानंद जी, स्वामी निरंजनानंद जी और स्वामी सत्यसंगानंद जी द्वारा दिखाए गए ज्योतिर्मय पथ का सम्मान करते हुए उस पर आगे बढ़ सकेंगे।

सेवा के सूत्र

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मैं सदा से कठोर परिश्रमी रहा हूँ। कर्म और सेवा में मेरी गहन रुचि, तत्परता और तन्मयता है। मैं किसी भी काम को पूरा होने से पहले नहीं छोड़ता। हर काम को मैं तत्क्षण और तत्स्थान पूरा कर देता हूँ। काम-काज में प्रमाद मुझे कतई स्वीकार नहीं।

अपने भीतर उफनते सेवा के प्रबल भाव का मैं कदापि दमन नहीं कर सकता। सेवा विहीन जीवन की मैं कल्पना तक नहीं कर सकता। सेवा करते हुए मुझे अत्यधिक आनन्द की प्राप्ति होती है। सेवा के द्वारा मेरी आंतरिक शुद्धि हुई है, मेरा आध्यात्मिक उत्थान हुआ है।

पतितों को उठाना, नेत्रहीनों का मार्गदर्शन करना, पीड़ितों को दिलासा देना, दुखियों के चेहरे पर मुस्कान लाना और इस हेतु अपना सर्वस्व लुटा देना – यही मेरे जीवन का आदर्श है। अपने हृदय की गहराई से ईश्वर में सम्पूर्ण श्रद्धा, प्रेम और भक्ति रखना; अपने पड़ोसियों से आत्मवत् प्रेम करना; गउओं, मूक पशुओं, स्त्रियों एवं बच्चों की रक्षा करना – यही मेरे ध्येय हैं।

सेवा का मूल्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

ध्यान लगाना सरल है। रामायण, गीता या भागवत पढ़ना सरल है। योग सिखाना भी सरल है। पर इस कृतघ्न मानव की सेवा करना संसार में मोक्ष की तरह कठिन है। जो साधना सबसे बड़ी है, जो सर्वाधिक संतोष देती है और बिना किसी झंझट के ईश्वर का दर्शन कराती है वह है परमार्थ। लेकिन वह साधना हो नहीं पाती।

हमारे गुरु, स्वामी शिवानन्द जी की सहज वृत्ति थी परमार्थ की। हम आश्रम में कोढ़ियों, मेहतरों और बीमारों की सेवा करते थे, आश्रम में कोई भी आता था तो उनको कमरा देकर अच्छे से रखते थे, पर हमें कुछ समझ में नहीं आता था कि ऐसा क्यों करते हैं, भले ही हम शुरू से उनके साथ रहे। गुरुजी कहते थे, हम इसीलिए करते थे।

ऋषिकेश में कोढ़ी सड़क के किनारे बैठकर भिक्षा माँगते थे। तब स्वामीजी ने उन डेढ़-दो सौ परिवारों के लिए कॉलोनी बनवाई। उन लोगों के लिए झोपड़ी बनाने की ड्यूटी हमको दी गई। हमको बचपन से ही भवन-निर्माण का शौक रहा है, लगता है विश्वकर्मा के संस्कार लेकर पैदा हुए हैं।

उन दिनों गाँधीजी की सहयोगी, मीराबेन भी वहाँ रहती थीं। उनसे खर ले लिया और खर से दिवार बना दी, छत और दरवाजे भी बना लिए। उसके बाद हमको ड्यूटी दी गई – रोज रामायण सिखाओ। रोज सबेरे-शाम वहाँ जाते थे, रामायण सिखाते थे। डर भी लगता था कहीं कोढ़ न हो जाए! अगर स्वामीजी ने नहीं कहा होता, तो हम कभी नहीं जाते।

इसी बीच में मेरी ड्यूटी लाहौर लग गई और मैं किताबों की छपाई के काम के लिए लाहौर चला गया, लेकिन कभी जीवन में यह समझ में नहीं आया कि सेवा का क्या मूल्य है। ध्यान का मूल्य समझ में आता था, कुण्डलिनी योग, तंत्र आदि का मूल्य समझ में आता था, बस एक सेवा का मूल्य समझ में नहीं आता था कि आखिर कोढ़ी को खाना खिलाने से क्या होता है, बीमार को दवा देने से क्या होता है। 'मरने दो अभागे को, अपनी तकदीर लेकर आया है, वैसे भी करोड़ों मर रहे हैं अफ्रीका में, हिन्दुस्तान में, हमारे आगे-पीछे, तो इसे भी मरने दो' – हम तो ऐसे ही सोचते थे।

गुरुजी का आश्रम छूटा, मुंगेर आए तो योग सिखाना शुरू कर दिया। वहाँ पर बीच-बीच में गोयनका जी कभी कोढ़ियों को खाना खिला देते थे, कभी कम्बल दे देते थे। वे संस्था के सचिव थे, संस्था से पैसा लेकर करते थे। मैं हाँ बोल देता था, दस्तखत भी कर देता था, मगर मेरे को कोई दिलचस्पी नहीं थी।

सन् 1989 में मेरे अन्दर बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। मेरे को स्पष्ट आवाज आई। उसके बाद मेरे जीवन का लक्ष्य योग नहीं, मोक्ष नहीं, भक्ति नहीं, अनुभव नहीं और ईश्वर का दर्शन भी नहीं, बल्कि यह हो गया कि जो कुछ मेरे पास है वह दूसरों के लिए है। ऐसे लोगों के लिए नहीं जिनके पास टी.वी., मोटरसाईकिल और मजा उड़ाने के लिए सब कुछ है, बल्कि मेरा सब कुछ उनके लिए है जिनके पास कुछ भी नहीं है। और मैं सबका हिसाब-किताब रखता हूँ। रात-दिन यही सोचता हूँ, 'भगवान! तुमने कह तो दिया है, लेकिन मैं क्या करूँ, मेरे को रास्ता बताओ।' मैंने स्वामी निरंजन को कह दिया कि योग सिखाओ और जो पैसा मिलता है गरीबों में लगाओ।

यह कार्य बहुत कठिन है। *सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामपि अगम्यः* – सेवा धर्म अत्यन्त गहन है, योगियों की भी वहाँ पर पहुँच नहीं है। भगवान की कृपा से हमको रास्ता मिल गया है, अपने को अब और किसी चीज की जरूरत नहीं है। जब तक जीवित हैं तब तक यही करेंगे और अगर दूसरा जन्म मिलेगा तो भी यही करेंगे – कृतघ्न मानव की सेवा।

व्यावहारिक वेदान्त

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

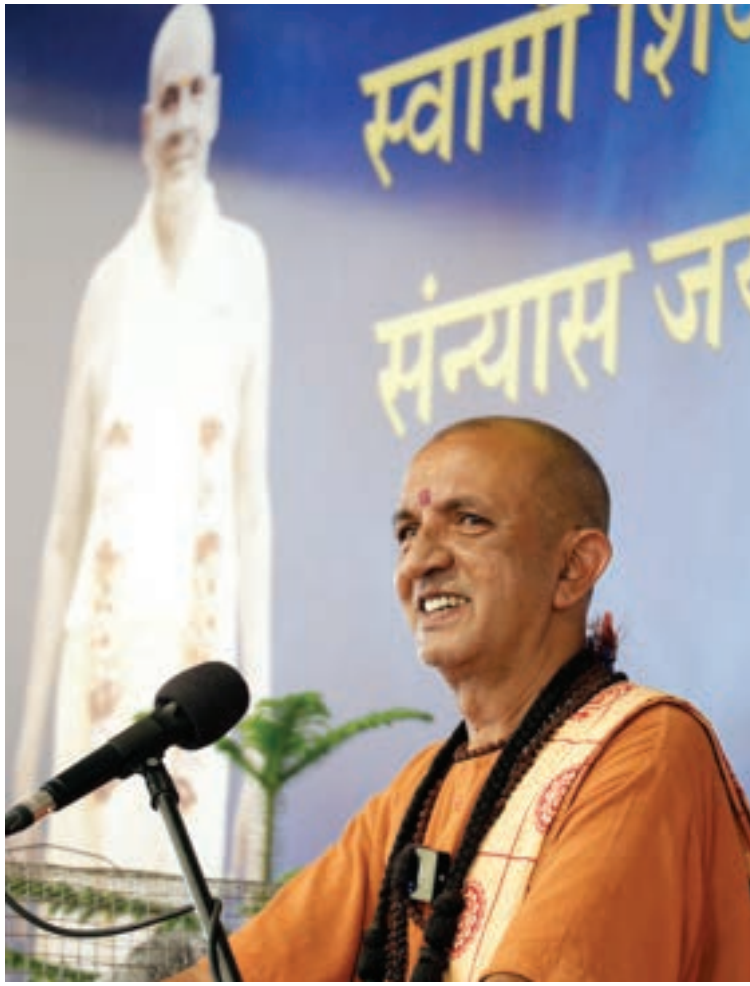

हमारे सद्गुरुदेव, श्री स्वामी शिवानंद जी जो सोचते थे, जो कहते थे, जो अनुभव करते थे, वही जीते थे। उनकी सोच और करनी में कोई अंतर नहीं होता था, क्योंकि वे द्वैत भाव में रहते ही नहीं थे। जो द्वैत भाव में रहता है, उसी की करनी और विचारों में भेद होता है, क्योंकि वह अपने स्वार्थ से जुड़ा हुआ है, अपने

सुख-सुविधा की कामना से जुड़ा हुआ है, अपने अहंकार और महत्त्वाकांक्षा से जुड़ा हुआ है, कभी किसी का त्याग नहीं कर पाया। लेकिन स्वामी शिवानंद जी साधारण मनुष्य तो थे नहीं, वे तो शिव के अवतार थे और उनके आने का एक विशिष्ट प्रयोजन भी था – *धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।* इसलिए आप देखोगे कि अवतारी पुरुष और वास्तविक सिद्ध-महात्मा कभी द्वैत भाव को लेकर नहीं चलते हैं, बल्कि हमेशा सभी जीवों में, सभी प्राणियों में उस ईश्वरीय तत्त्व का दर्शन, सम्मान, सत्कार और सेवा करते हैं। इसी को साधुता कहते हैं।

स्वामी शिवानंद जी का जीवन एक व्यावहारिक वेदान्ती का रहा। एक व्यावहारिक वेदान्ती के रूप में जो गुण उनके जीवन में दिखलाई दिये और जिन्हें उन्होंने दूसरों को भी अपनाने के लिए प्रेरित किया ताकि वे व्यावहारिक रूप से एक अच्छे जीवन को व्यतीत कर सकें, उनमें पहला गुण था सेवा। हमारे गुरुदेव कहते हैं कि महर्षि पतंजलि का अष्टांग योग, जिसका अंत होता है 'समाधि' में, वह अपने ही स्वार्थ से जुड़ा हुआ है। 'मैं मोक्ष चाहता हूँ' इसमें 'मैं' आ गया। 'मैं सिद्धि चाहता हूँ', 'मैं समाधि की कामना करता हूँ', यहाँ भी 'मैं' आ गया। मैं 'मेरे लिए' ही कर रहा हूँ। इस तरह पातंजल योग 'मेरे लिए' यानि अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए, अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए है। महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग के बाद स्वामी शिवानंद जी का योग आरंभ होता है, ऐसा हमारे गुरुदेव का कहना रहा है।

स्वामी शिवानंद जी का योग आरंभ होता है सेवा से। *सेवा परमो धर्मः* – सेवा सबसे परम, सबसे उत्तम धर्म है। दूसरों की सेवा निष्काम भाव से होनी चाहिए। सेवा के बाद आता है 'धर्ममय जीवन व्यतीत करना।' धर्ममय जीवन का अर्थ होता है मर्यादित और व्यवस्थित जीवनशैली का पालन करना। उनके व्यावहारिक वेदांत का तीसरा गुण था – विश्व प्रेम। केवल अपनों से ही प्रेम नहीं, बल्कि इस विश्व में वास करने वाले संपूर्ण जीवों से प्रेम। जो प्रेम मैं अपने लड़के के लिए कर सकता हूँ, वैसा ही प्रेम अन्य जीवों के लिए भी होना है, उसी को विश्व प्रेम कहते हैं। केवल बोलना कि 'मैं सबसे प्रेम करता हूँ' विश्व प्रेम नहीं कहलाता, उसे अभिव्यक्त करके दिखलाओ।

चौथा सद्गुण है वैराग्य – संसार से, संसार के विषयों से, स्वजनों से, अपने से अनासक्त भाव रखना। हाँ, अपने से भी वैराग्य होना चाहिए। हमलोग तो अपने मन को पकड़कर रखते हैं, क्या किसी का अपने मन से वैराग्य होता

है? दूसरों से वैराग्य की कामना हम करते हैं, दूसरों से वैराग्य हो भी जाता है, लेकिन अपने स्वार्थ से कभी वैराग्य नहीं होता। जो अपने स्वार्थ से वैराग्य को प्राप्त करता है, वही सिद्ध कहलाता है और यही वैराग्य का वास्तविक अर्थ भी होता है।

फिर आता है 'तपस्या' का गुण, स्वयं को अनुशासित करना। आश्रम में लोग आते हैं, योग कक्षा में भाग लेते हैं, कठिन-कठिन आसनों का अभ्यास करना चाहते हैं, लेकिन पाँच मिनट शांति से स्थिर होकर नहीं बैठ पाते हैं। इसका मतलब कि जीवन में अनुशासन नहीं है, शरीर और इंद्रियों में अनुशासन नहीं है। जो पाँच मिनट स्थिर नहीं बैठ सकता, वह किस प्रकार की समाधि का अनुभव करना चाहता है? जो पाँच मिनट अपनी इंद्रियों को नियंत्रण में नहीं रख सकता, वह किस प्रकार ध्यान करना चाहेगा, सब बकवास है। इसीलिए तपस्या का महत्त्व होता है। पेड़ से उल्टा लटकने को तपस्या नहीं कहते, अग्नि में तपने को तपस्या नहीं कहते, ठंढे पानी में खड़े होकर छ: घंटा जप करने को तपस्या नहीं कहते। तपस्या स्वयं का एक अनुशासन है और यह अनुशासन सहज एवं सरल भी होता है, कठोर भी होता है। बिना सहज अनुशासन को प्राप्त किए लोग कठोर अनुशासन को सिद्ध करना चाहते हैं, इसलिए कभी किसी को सिद्धि मिलती भी नहीं है। तपस्या के साथ योग और ध्यान भी इस व्यावहारिक वेदांत के अंग बनते हैं।

योग और ध्यान के साथ आत्मविचार भी होना है। आत्मविचार का अर्थ होता है स्वयं को जानना-परखना, लेकिन आत्मविचार में यह कहना कि 'मैं ब्रह्म हूँ' बकवास है। आत्मविचार में पहले अपने भीतर अपने दोषों को खोजो और स्वयं को उन दोषों से मुक्त करो। तुम्हारे भीतर घृणा है, द्वेष, क्रोध, काम और लोभ है, फिर भी कहोगे कि 'मैं ब्रह्म हूँ'? जब तक तुम अपने दोषों से मुक्त नहीं होगे, क्या कर पाओगे? 'मैं परमात्मा का अंश हूँ' या 'मैं जीव अविनाशी हूँ' कहने का कोई मतलब नहीं होता, क्योंकि उसका अनुभव मनुष्य कभी नहीं कर पाएगा। आत्मविचार के साथ जब हम आत्मसुधार की प्रक्रिया के द्वारा अपने आपको दोषमुक्त करते हैं तब फिर हमलोगों का मन सकारात्मक होता है। यहाँ से फिर अगले गुण – सकारात्मक चिंतन की शुरुआत होनी है।

उसके बाद आता है 'संतुलित जीवन' यानि 'बैलेंस्ड लाइफ'। ऐसा जीवन जिसमें सुख भी प्रभावित न करे और दुःख भी प्रभावित न करे। इसके साथ-ही-साथ श्रद्धा और भक्ति को भी विकसित करना है।

ये स्वामी शिवानंद जी के व्यावहारिक वेदांत की सीढ़ियाँ हैं। आप वेदों और उपनिषदों में जो पढ़ते हो, उसका सार है यह। उपनिषदों को पढ़कर व्याख्या लिखने वाले लोग आपको बहुत मिल सकते हैं, लेकिन अपने आपको सुधारने वाले एक या दो ही होते हैं। जो अपने आपको सुधार कर, उस अनुसार अपने जीवन को व्यतीत कर सकता है, वही व्यावहारिक वेदान्ती कहलाता है और वही आदिगुरु शंकराचार्य के वेदांतिक विचारों को जीवन का अंग बनाकर अपने जीवन को दिव्य बना लेता है। यही स्वामी शिवानंद जी का संकल्प रहा और इसीलिए उन्होंने अपनी संस्था को 'दिव्य जीवन संघ' के नाम से स्थापित किया।

यही स्वामी शिवानन्द जी के जीवन का सार है। एक संन्यासी के जीवन का यही सार होना चाहिए। जब स्वामी शिवानंद जी पूर्वाश्रम में थे तो करुणा, संयम, विनम्रता, सेवा, भक्ति और समभाव – ये छः गुण हमेशा उनके जीवन में प्रकट हुआ करते थे और जब उन्होने अपनी साधना-तपस्या को सिद्ध किया, तो उनके जीवन का जो व्यवहार था, उसको ही हम व्यावहारिक वेदांत के नाम से पुकारते हैं। इसके अन्तर्गत जो बारह गुण रहे वे हैं – सेवा, धर्म, विश्व प्रेम, वैराग्य, तपस्या, योग, ध्यान, आत्मविचार, सकारात्मक चिंतन, संतुलित जीवन, श्रद्धा और भक्ति। ये बारह गुण ही उनके जीवन का निचोड़ भी रहा है।

– 14 अगस्त 2024, पादुका दर्शन, मुंगेर

सेवा योग

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सेवा का उद्देश्य क्या है? दीन-दरिद्र और पीड़ित मानवता की सेवा क्यों करते हैं? समाज और देश की सेवा किसलिए करते हो? हाँ, सेवा के द्वारा तुम्हारा हृदय शुद्ध होता है। अहंभाव, घृणा, ईर्ष्या, उच्चता की भावना और इसी प्रकार की सारी कुत्सित भावनाओं का नाश होता है तथा नम्रता, शुद्ध प्रेम, सहानुभूति, सहिष्णुता और दया जैसे गुणों का विकास होता है। सेवा से स्वार्थ-भावना मिटती है। द्वैत-भावना क्षीण होती है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण विशाल और उदार बनता है। एकता का भान होने लगता है। परिणामस्वरूप आत्मा का ज्ञान प्राप्त होने लगता है। एक में सब और सब में एक की अनुभूति होने लगती है। तभी असीम सुख प्राप्त होता है। आखिर समाज क्या है? अलग-अलग व्यक्तियों या इकाइयों का समूह ही तो है। विश्व ईश्वर का ही व्यक्त रूप

है। सेवा ही ईश्वर की पूजा है। लेकिन सेवा में भाव चाहिए। तभी हृदय-शुद्धि और त्वरित साक्षात्कार सम्भव है।

भेदभावना घातक होती है, अतः उसे मिटा देना चाहिए। उसे मिटाने के लिए ब्रह्म-भावना, चैतन्य की अद्वैतता का विकास और निःस्वार्थ सेवा की आवश्यकता है। भेद-भावना अज्ञान या माया द्वारा रचित एक भ्रम-मात्र है।

अहैतुक और निःस्वार्थ सेवा के प्रति तीव्र उत्साह का विकास करना चाहिए। सबके प्रति दया-भाव रखो, सबसे प्रेम करो, सबकी सेवा करो, सबके प्रति उदार बनो, सहिष्णु रहो। सबमें ईश्वर की सेवा करो। यही लक्ष्य-प्राप्ति का मार्ग है।

जिस प्रकार किसी माता के नौ बच्चे मर जाएँ, सिर्फ एक बचा रहे, तो वह माता उस एक बच्चे का बहुत ध्यान रखती है, उसी प्रकार, हमें भी प्राणी-मात्र के प्रति असीम प्रेम रखना होगा। साधक के लिए आवश्यक प्रथम और प्रमुख गुण यही है। जो इस असीम प्रेम से सम्पन्न होगा, उसका दिव्य शरीर अद्भुत तेज से चमकेगा और अवर्णनीय कान्ति से दीप्त होगा।

जो मनुष्य सदा अपने सुख और सुविधाओं को भुलाकर दूसरों की सहायता करने का ही प्रयत्न करता है, वही वास्तव में आध्यात्मिक मार्ग का योग्य साधक है। आत्मानन्द के साम्राज्य का द्वार खोलने की कुंजी उसके हाथ लग जाती है।

आजकल के नये साधक कोई सुगम कार्य करना पसन्द करते हैं, जैसे लिखना, पूजा के लिए फूल चुनना, पुस्तकालय में पुस्तक सजाना, टाइप करना, किसी काम का निरीक्षण या प्रबन्ध करना, आदि। पानी भरना, लकड़ी चीरना, रसोई के बर्तन साफ करना, कपड़े धोना, झाड़ना, खाना पकाना, पखाना साफ करना और रोगियों की सेवा करना जैसे काम उन्हें पसन्द नहीं आते हैं। उन्हें ये काम नीच मालूम होते हैं। उन्होंने कर्मयोग और वेदान्त को सही मायने में समझने का प्रयत्न नहीं किया है। अभी वे बाबू ही हैं। उन्हें कठोर अनुशासन और प्रशिक्षण की आवश्यकता है। मैं ऐसे बाबू-साधकों को हमेशा एक वर्ष बर्तन माँजने में, और एक वर्ष तक रोगियों का कमरा झाड़ने-बुहारने एवं कपड़े धोने में लगाता हूँ। तभी वे वास्तविक साधक बनते हैं और तभी ध्यान प्रारम्भ करने की योग्यता उनमें आती है।

आश्रमों का प्रबन्ध यदि ढंग से नहीं किया गया तो वहाँ का रसोईघर लड़ाई-झगड़े का अखाड़ा बन जाता है। सारी माया रसोई घर में ही है। साधक

वहाँ लड़ने लगते हैं। एक कहता है, 'मुझे आज घी या साग नहीं मिला।' दूसरा कहता है, 'दाल में पानी अधिक है। अमुक ने दाल में गंगाजी का पानी डाल दिया है। वह मुझसे नाराज है।' तीसरा साधक कहता है, 'विमल बहुत सारी चीनी खा गया, आज दूध के लिए चीनी बची ही नहीं।' यदि नये साधकों का शिक्षक सच्चा कर्मयोगी है, तो आश्रमों के रसोई घर से ही अद्वैत वेदान्त का पाठ आरम्भ होता है और हिमालय पर्वत की वशिष्ठ-गुफा में समाप्त होता है। सहिष्णुता, धैर्य, क्षमा, दया, करुणा, प्रेम, सामञ्जस्य स्थापित करने, सच्ची सेवा-भावना आदि गुणों को विकसित करने, चित्त को शुद्ध करने और जीव-मात्र की एकता का अनुभव करने के लिए रसोई घर एक उत्कृष्ट विद्यालय है। प्रत्येक साधक को अच्छी तरह रसोई बनाना सीखना चाहिए।

साधक यदि गुरु के साथ रहता है, तो जो भी काम दिया जाए, उसे रुचि के साथ करने को तैयार रहना चाहिए। जिस काम को देखकर मन भागता हो, उसके प्रति यदि रुचि पैदा की जाए, तो कोई भी काम करने की इच्छा सहज होने लगेगी और इस प्रकार साधक का मनोबल निश्चित ही विकसित होगा।

मन का सन्तुलन बनाए रखने से मनुष्य वास्तविक नित्य-सुख प्राप्त करता है। यह सुख बाजार से खरीदी जाने वाली वस्तु नहीं है। यह ऐसी वस्तु है, जो आत्म-भाव से, समदृष्टि के साथ संयत इन्द्रियों से, आत्म-निग्रह-पूर्वक की गयी निःस्वार्थ और सतत् सेवा से तथा निरहंकारिता, विशालता, उदार सहिष्णुता,

उच्च कोटि के धैर्य, करुणा, शान्ति, उद्वेग का नियन्त्रण आदि गुणों का विकास करने से और इसी प्रकार कामनाओं, चिन्ताओं, भय और उदासी को ध्यान और आध्यात्मिक साधना के द्वारा दूर करने से प्राप्त की जा सकती है। शान्ति और मन का सन्तुलन ही मनुष्य को शाश्वत सुख प्रदान कर सकते हैं। जिस महापुरुष ने यह शान्ति और समाधान प्राप्त कर लिया है, वह जिस सुख का अनुभव करता है, उसके सामने तीनों लोकों का वैभव भी अति तुच्छ सिद्ध होगा। ईमानदारी से सोचें कि आखिर आनन्द कहाँ है? कौन बड़ा आदमी है? क्या यह आनन्द उस वैभव-सम्पन्न राजा के पास है, जिसका मन चंचल और असन्तुलित है तथा जो राजमहल में निवास करता है, या उस गरीब साधु के पास है, जिसका मन शान्त, तेजोमय और सन्तुलित है तथा जो गंगा माता के पवित्र तट पर एक घास-फूस की झोपड़ी में वास कर रहा है?

हम यदि किसी की सेवा करना चाहते हैं, तो हर तरह से उसे प्रसन्न करना होगा। ऐसा कोई काम नहीं करना होगा, जिससे वह अप्रसन्न हो। ऐसा ही काम करना होगा, जिससे उस व्यक्ति को अतीव सुख मिले। इसी प्रकार सच्ची सेवा होती है। लेकिन सामान्यतया लोग सेवा का ढोंग रचते हुए खुद को ही सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। यह बड़ी भूल है। किसी को तेज धार वाला छुरा देना हो, तो जो व्यक्ति तेज धार अपने हाथों में लेकर मूठ दूसरे को पकड़ाता है, वही सच्चा सेवक है। सच्चा सेवक दुःख भोगने से सुख पाता है। वह अपने कन्धों पर ऐसे काम का भार ले लेता है, जो बहुत उत्तरदायित्त्वपूर्ण है, कठिन है और जिसमें बहुतों की अरुचि रहती है तथा दूसरों को प्रसन्न रखने के लिए वह स्वयं अपने को मिटा देता है। दूसरों की सेवा करने और उन्हें खुश करने के लिए स्वयं स्वेच्छा से दुःख और कष्ट भोगने लगता है।

दो-दो घण्टे तक कुम्भक क्रिया द्वारा श्वास रोक लेना, चौबीसों घण्टे प्रार्थना रटते रहना, खाना-पीना छोड़ कर तहखाने के अन्दर चालीस दिन तक समाधि लगाना, खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हुए जीभ काट लेना, ग्रीष्म ऋतु की चिलकती धूप में एक पैर पर खड़े रहना, ठीक मध्याह्न के समय सूर्य पर त्राटक करना, किसी निर्जन और नीरव वन में ॐ ॐ ॐ का जप करना, संकीर्तन करते समय अश्रुधारा बहाना – ये सब तब तक निरर्थक हैं जब तक कि इनके साथ व्यक्ति में प्रत्येक प्राणी के अन्दर स्थित ईश्वर के प्रति ज्वलन्त प्रेम न उमड़े और भूत-मात्र में ईश्वर की सेवा करने की भावना जागृत न हो। खेद का विषय है कि आजकल के साधकों में ये दो अपरिहार्य गुण बिल्कुल

नहीं होते और यही कारण है कि वे एकान्तवास करते हुए भी ध्यान-मार्ग में विशेष प्रगति नहीं कर पाते हैं। प्रारम्भ में प्रेम और सेवा के निरन्तर अभ्यास के द्वारा उन्होंने अपने अन्तःकरण को तैयार नहीं किया है।

मैंने अपने जीवन-काल में ऐसे अनेक भक्त देखे हैं, जो अपने गले और कलाइयों में कई जप-मालाएँ पहने रहते हैं और हाथ में एक लम्बी माला लेकर दिन-रात 'हरे राम हरे कृष्ण' का जप करते रहते हैं। ये भक्त कभी किसी रोगी के पास नहीं जाते हैं। वह मर रहा हो, तो उसे कुछ दूध या पानी भी नहीं देते हैं और पूछते भी नहीं कि 'क्यों भाई, क्या चाहिए। मैं सेवा करूँ?' रास्ते में कोई दिख जाए तो कौतूहलवश दूर खड़े देखते रहते हैं। क्या इन्हें सच्चा वैष्णव या भक्त कहा जा सकता है? क्या इनके भजन और ध्यान से रंच-मात्र भी वास्तविक लाभ होने वाला है? एक जीवित नारायण सामने मरने की हालत में है, वह कठिन सन्धि-काल में है, उसका जीवन डाँवाडोल है, तब भी इन भक्तों के हृदय में उनकी सेवा करने या उनसे दो मीठी बातें करने तक की इच्छा नहीं होती। ऐसे कठोर-चित्त होकर उस करुणासागर हरि के दर्शन की अपेक्षा ये कैसे कर सकते हैं? ये उस ईश्वर का साक्षात्कार करने की आशा कैसे कर सकते हैं, जबकि प्रत्येक प्राणी में उनका दर्शन करने योग्य उनकी आँखें ही नहीं हैं और सभी रूपों में उस ईश्वर की सेवा कर सकने की भावना ही नहीं है?

जिस व्यक्ति में ज्ञान और भक्ति है, वही वास्तव में देश और जनता की पूरी सेवा कर सकता है। ज्ञान और भक्ति ही कर्मयोग की आधारशिला होनी चाहिए। प्रारम्भ में कर्मयोग के साथ ज्ञान या भक्ति-योग को मिलाने से बहुत

लाभ होता है। ज्ञान-कर्मयोगी अनुभव करता है कि वह अपनी आत्मा की ही सेवा कर रहा है और उसे अद्वैतानुभूति होती है। भक्ति-कर्मयोगी सोचता और अनुभव करता है कि वह सबमें इष्टदेव की ही पूजा कर रहा है और उसे ईश्वरानुभूति होती है तथा अपने प्रियतम के दर्शन हो जाते हैं। बिना ज्ञान और भक्ति के केवल दयावश कुछ भीख आदि देना साधारण सामाजिक-सेवा से अधिक कुछ नहीं है। वह न तो योग है, न पूजा। वह निम्न-स्तर का काम है। उससे मनुष्य की बहुत उन्नति नहीं हो सकती। उसे यदि प्रगति कहते हो, तो भी वह अत्यन्त धीमी और मूढ़ प्रगति है। याद रखो, मनोवृत्ति या भाव ही कल्याणकारक होता है।

जो कर्मयोगी प्रारम्भ में सारे काम ईश्वर की पूजा के रूप में करता है, अपना शरीर, मन और सभी क्रियाएँ उस ईश्वर के चरण-कमलों में फूल की तरह समर्पित करता है, वह सतत् चिन्तन के द्वारा ईश्वरमय हो जाता है और पूर्ण समर्पण के द्वारा ईश्वर में लीन हो जाता है। वह ईश्वर से एक-रूप हो जाता है। उसकी इच्छाएँ ब्रह्माण्डीय इच्छाओं से मिल जाती हैं। यह उसकी अन्तिम और समुन्नत स्थिति है। वह इस बात का अनुभव करेगा कि संसार में जो-कुछ हो रहा है, सब ईश्वर की लीला के सिवाय कुछ नहीं है। ब्रह्मसूत्र के *'लोकवत् तु लीलाकैवल्यम्'* वाक्य की सत्यता का वह अनुभव करता है। उसे ऐसा भान होगा कि वह ईश्वर के साथ एक हो गया है और उसकी लीला में वह भी सहभागी है। वह ईश्वर के लिए ही जीता है। अब उसके विचार और काम ईश्वर के ही विचार और काम हो जाते हैं। परदा उठ जाता है। भेदभाव पूर्णतया मिट जाता है। अब वह दिव्य ऐश्वर्य का सुख भोगने लगता है।

अस्पताल में काम करने वाले डॉक्टर को यह भावना रखनी चाहिए कि रोगियों के रूप में ईश्वर ही प्रकट हुआ है। उसे समझना चाहिए कि यह शरीर ईश्वर का चलता-फिरता मन्दिर है और यह अस्पताल बड़ा मन्दिर, वृन्दावन या अयोध्या है। उसे सोचना चाहिए कि 'मैं जो कुछ कर रहा हूँ, ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए कर रहा हूँ, ऊपर के अधिकारियों को खुश करने के लिए नहीं।' उसे समझना चाहिए कि ईश्वर अन्तर्यामी है। वही पीछे से सभी का संचालन करता है और इस शरीर का सूत्रधार वही है। उसे सोचना चाहिए कि वह अपना सारा काम ईश्वर की इच्छा से ही कर रहा है, जिसकी विराट् योजना है। उसे अपने सारे अच्छे-बुरे काम ईश्वर के चरणों में समर्पित करने चाहिए और कहना चाहिए, *'ॐ तत्सत् कृष्णार्पणमस्तु'*, अथवा *'ॐ तत्सत्*

ब्रह्मार्पणमस्तु' यह क्रम रोज रात को सोने से पहले चलना चाहिए। यही वह ज्ञानाग्नि है, भक्ति की अग्नि है, जो सारे कर्मों का फल समाप्त करती, चित्त-शुद्धि लाती, आत्मज्ञान दिलाती और परम गति प्राप्त कराती है। स्वप्न में भी उसे नहीं सोचना चाहिए कि 'मैंने इतना प्रशंसनीय कार्य किया है, मुझे स्वर्ग की प्राप्ति होगी, मैं अगले जन्म में धनवान् बनूँगा।' इस प्रकार का अभ्यास सतत् करते रहने पर क्रमशः अपने काम के प्रति मन अनासक्त होता जाएगा। महिलाओं को घर का काम करते समय प्रतिदिन इसी प्रकार की भावना का अभ्यास करना चाहिये। इस ढंग से सारे कर्म आध्यात्मिक बनते हैं। सारे कर्म ईश्वर की उपासना बन जाते हैं। इस सही मनोवृत्ति से काम करते रहने पर मनुष्य अपने जीवन में चाहे जिस परिस्थिति में भी हो, ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव कर सकता है।

वह परमेश्वर, वृन्दावन का बंशी बजैया, राधावल्लभ, देवकीनन्दन हमें सच्ची श्रद्धा, शुद्ध प्रेम, उचित मनोभाव और आन्तरिक आत्मिक शक्ति प्रदान करे, जिससे हम नारायणभाव से विश्व की निःस्वार्थ सेवा करते हुए उस ईश्वर का अस्तित्व अनुभव कर सकें तथा उसका स्मरण करते हुए अपने सारे कर्म, शरीर, मन तथा आत्मा को उसके चरण-कमलों में चढ़ा सकें! हम सब पर शिव और हरि की कृपा बनी रहे!

सेवा, करुणा और प्रेम

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक जीवन सेवा से प्रारम्भ होता है। स्वामी शिवानंद जी का मूल सिद्धान्त सेवा ही था। वे कहते थे, 'पहले सेवा करो, प्रेम करो, दान दो, शुद्ध बनो; तब ध्यान, फिर अनुभूति।' ध्यान तो उनके साधनाक्रम में बहुत बाद में आता था। तुम लोगों का आध्यात्मिक जीवन ध्यान से शुरू होता है, जबकि हमारे गुरुजी का आध्यात्मिक जीवन ध्यान में समाप्त होता था।

गरीबों की सेवा

संसार में गरीब व्यक्ति तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन को चुनौती हैं, चाहे वे एशिया, अफ्रीका या संसार में कहीं भी हों। वे शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक रूप से कष्ट से गुजर रहे हैं। अपनी आय का कितना प्रतिशत तुम उनपर खर्च करते हो? अपनी आमदनी का दसवाँ हिस्सा भगवान की प्रकृति, भगवान की माया, भगवान के भक्तों के लिये खर्चा होना चाहिए। यह आध्यात्मिक जीवन का प्रयोजन है। नहीं तो भगवान के बारे में बात मत करो। तीस दिन का दसवाँ हिस्सा हुआ तीन दिन। तीन दिन में जितना तुम अपने भोग के लिए खर्च करते हो, किसी गरीब की पढ़ाई के काम में लगा दो। तुम गरीब की सेवा कैसे करोगे? यह तुम अपने आपको बताओ। यदि तुम ईश्वर को पाना चाहते हो, तुम्हें अपने आपको बताना पड़ेगा कि कैसे सेवा करनी है। यदि तुम निर्विकल्प समाधि, सविकल्प समाधि, भाव समाधि या किसी भी प्रकार की समाधि तक पहुँचना चाहते हो; यदि तुम भगवान का दर्शन

करना चाहते हो तो गरीब लोगों की सेवा करके रास्ता पा सकते हो। तुम्हारा खून, आत्मा, शरीर, युवावस्था, धन, बुद्धि, सभी कुछ गरीब व्यक्ति की सेवा में समर्पित होना चाहिए।

अपने पड़ोसियों की सुध लो। तुम्हारे पड़ोसी कौन हैं? सिर्फ तुम्हारे घर के आगे-पीछे, दायें-बायें नहीं, बल्कि *वसुधैव कुटुम्बकम्* का भाव होना चाहिए। उदार हृदय वालों के लिए तो समस्त विश्व ही पड़ोस है और सभी लोग उनके पड़ोसी हैं। *अयं निजः परोवेत्ति गणना लघुचेतसाम्* – लेकिन कृपण लोग, जिनका हृदय छोटा है, वे सोचते हैं, 'यह मेरा है, वह तेरा है।' तुम अपने और पराये के बीच भेद करते हो, परन्तु मैं उस प्रकार के भेद-भाव से अपने को सीमित नहीं करना चाहता। मैं सोचता हूँ, 'भगवान! सब कुछ आपका दिया है, इसलिये आपका ही है। आप दाता हैं, आप ही भण्डारी हैं, आप ही सुख-संपदा के सागर हैं। आपने मुझे सब कुछ इसलिए दिया है कि मैं दूसरों को दे सकूँ।' हर व्यक्ति की सोच इस प्रकार की होनी चाहिए।

तुम पैसे कमाओ, अच्छा घर बनाओ, तुम्हें अच्छा पति मिले, अच्छी पत्नी मिले, तुम अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दो। इसमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु यही मानव जीवन का लक्ष्य नहीं है। अगर यही मानव जीवन का लक्ष्य है तो मानव और पशु में कोई अंतर नहीं रह जायेगा। आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन, मानव और पशु जीवन में एक समान हैं। यह तुम खुद देख सकते हो, तो फिर हममें और पशु में अन्तर कहाँ है? क्या हम जानवरों से किसी प्रकार भिन्न हैं? हाँ, हम पशुओं से भिन्न हैं, क्योंकि हमें परमात्मा का स्मरण है। यही संदेश है जो मैं तुम सबको देना चाहता हूँ।

हाँ, निश्चित रूप से तुम जीवन में आनन्द उठाओ, अपने पैसे का उपयोग अपने को खुश रखने में करो, लेकिन याद रखो, जो सुख तुम विषय भोग में खोज रहे हो, वह केवल पलायन का रास्ता है। जिनके जीवन में कोई सुख नहीं है, उनको सुखी बनाना ही तुम्हारा आनन्द होना चाहिए। तुम्हारा आनन्द, तुम्हारी खुशी उन लोगों को कुछ देने या बाँटने में होनी चाहिए जो खुश नहीं हैं। ईसामसीह, सन्त फ्रांसिस, बुद्ध, महावीर और महात्मा गाँधी की मुख्य शिक्षा भी यही है। यह स्वामी सत्यानन्द का उपदेश नहीं है। जो कुछ उन लोगों ने कहा मैं तो उसे फिर से याद दिला रहा हूँ।

अपनी संपदा बाँटो – भगवान ने जो तुमको दिया, तुमने उसे लापरवाही से उड़ा दिया। जो धन दिया उसको तुमने ठाट-बाट में उड़ाया है। लाखों रुपये अपने ऊपर खर्च करते हो, गरीबों के लिए कुछ नहीं करते। चाहे गृहस्थ हो या संन्यासी, उसे अपने ऊपर उतना ही खर्च करना चाहिए, जितनी जरूरत हो, उचित हो, धर्म के अनुकूल हो। भगवान ने तुम्हें सुन्दर घर, पत्नी, बच्चे दिये हैं, मगर तुम्हें दुनिया को भी तो देखना होगा। तुम्हें गरीब, असहाय, अभागे, बीमार, लंगड़े-लूले लोगों के लिए कुछ करना होगा। चाहे तुम संन्यासी हो या गृहस्थ, अगर तुम मन की शान्ति चाहते हो, अगर तुम मुक्ति चाहते हो तो वह नहीं मिलेगी, क्योंकि तुम्हारे चारों तरफ चिन्ताएँ हैं, समस्यायें हैं, अशांति है। जब सारा संसार दुःखी है तो तुम कैसे सुखी रह सकते हो? इसलिए पहले दूसरों की देखभाल करो, फिर अपने आपकी। पहले उनके मोक्ष का ध्यान रखो, फिर तुम्हारे मोक्ष की गारंटी है। उनके सुख-समृद्धि का ध्यान रखो, तुम्हारे सुख-समृद्धि की गारंटी है। यही सारे धर्मों का सारांश है, सारे संतों का मत है।

अपने पैसे बाँटो। बैंक में एक खाता अपने परिवार के लिए रखो और दूसरा मानव-जाति के लिए। अपनी धन-सम्पदा और ऐश्वर्य को बाँटना सीखो। ऐशो-

आराम और सुविधा का जीवन आत्मघाती जीवन है। सादा जीवन संतुलित और अच्छा होता है। भौतिक सम्पत्ति से प्रभावित मत होना। तुम्हें घर-परिवार के बाहर की स्थिति को भी सुधारना होगा। हम दो हमारे दो, यह समाधान नहीं, बल्कि 'हम दो हमारे सब' – यही नारा हमारे सामने गूंजना चाहिए।

मनुष्य के पास जो कुछ है उसका एक बड़ा हिस्सा दूसरों के लिए खर्च करना चाहिए। दूसरों का मतलब असहाय, अन्धे, लंगड़े, अनाथ लोगों के लिए। इन सबमें भी इच्छा होती है। तुम्हें सिर्फ अपनी इच्छाओं की फिक्र लगी हुई है, कभी दूसरों की इच्छाओं की फिक्र लगी? जब तुम दूसरों की इच्छाओं की चिन्ता करोगे तो तुम्हारी अपनी इच्छाओं का दबाव तुम पर कम होगा। किसी अंधे आदमी पर एक-दो हजार खर्च करके डॉक्टर से जाँच करवा दो, हो सकता है उसे एक आँख मिल जाए। किसी कोढ़ी को रास्ते से उठाकर उसके लिए घर बनवा दो। दूसरों की मदद करना, सेवा करना, मुक्ति का सबसे सरल उपाय है। यही अध्यात्म की प्रथम कक्षा का सबक है। दूसरों की सेवा करो और स्वयं इच्छाओं से मुक्त हो जाओ।

निष्काम सेवा

निष्काम सेवा क्यों जरूरी है? अपने मन के रूपान्तरण के लिए। मन के रजोगुण और तमोगुण को साफ करने के लिए कर्मयोग साबुन का काम करता है। ऐसे कर्मयोग के लिए तुम्हारे मन में भाव होना चाहिए। कैसा भाव? इस देश में करोड़ों लोगों के पास न रहने का ठिकाना है, न खाने का; न खाना बनाने

की जगह है, न टट्टी करने की; और न पीने के लिए पानी है। तुमने क्या किया उनके लिए? तुम अपना समय बर्बाद कर रहे हो। चौबीस घण्टे मन के साथ कुश्ती कर रहे हो। कभी वह गिरता है कभी तुम। शाम को बैठकर बोलते हो, 'मुझे आज सिर में दर्द हो रहा है, दवा ले आओ।' कोई बोलता है, 'थक गये हैं, थोड़ा बोतल तोड़ लेते हैं।' कोई बोलता है, दम भर लेते हैं। कोई डिस्को जाने की बात करता है, कोई मंदिर की। कोई बोलता है योग निद्रा करेंगे, टेप लगा दो। मगर कोई यह नहीं सोचता कि किसी गरीब के घर में जाकर एक दिया जला दें। किसी अभावग्रस्त के घर में जाकर, जिसका बच्चा आज पैदा हुआ है, झूला लगा दें। तुम्हारा बच्चा होगा तो तुम्हें ख्याल आयेगा। बच्चा पैदा होने से पहले ही सब सामान आ जाता है। लेकिन दूसरे के लिए? तुम बधाई देते हो, पर उसकी मदद नहीं करते। उसको पालना दो, गर्म स्वेटर दो। माँ के लिए थोड़ा टॉनिक दे दो, परिवार के लिए थोड़ा पैसा दे दो।

दूसरों के लिए जियो

इस बात को याद रखो कि संसार में मनुष्य का कर्त्तव्य दूसरों के हित के लिए जीवित रहना है। जो आदमी केवल अपने लिये जीवित रहता है वह मनुष्य नहीं है, वह पशु भी नहीं है। क्या किसी मुर्गी को मुर्गी खाते देखा है? क्या किसी आम को आम खाते देखा है? वे लोग दूसरों के लिए जीवित रहते हैं। तुम खुद कमाते हो, खुद खाते हो। यह सच्ची मनुष्यता का लक्षण नहीं है।

मनुष्य ने अपने को स्वार्थ के घेरे में बाँध रखा है। तुम्हारी सीमायें हैं, यह मैं मान सकता हूँ। जब लंकासेतु बँध रहा था, उस वक्त एक गिलहरी थोड़ी-सी रेती ले जाती थी, गिरा देती थी। उसकी रेत से सेतु बँधा क्या? मगर उसकी भक्ति देखो, राम जी के प्रति उसकी समर्पित भावना को देखो! बस, यही मुख्य है। तुम्हारे अंदर कितना भाव है। भले ही तुम लखपति या करोड़पति न हो, लेकिन पैसे के बिना भी सेवा की जा सकती है, सहानुभूति से सेवा की जा सकती है। मान लो तुम कवि, लेखक या पत्रकार हो। कुछ ऐसा लिखो जिससे लोग प्रेरित हों। मान लो तुम एक नेता हो, पंचायत के मुखिया हो, प्रधान हो, एक ही बात बोलो – 'मनुष्य को अपने लिये नहीं, दूसरों के लिए जीवित रहना चाहिए।'

नदी दूसरे के लिए जीवित रहती है, गेहूँ दूसरों के लिए जीवित रहता है, सारी दुनिया की चीजें, कहीं भी तुम देख लो, दूसरों के लिए हैं। केवल इंसान इतना स्वार्थी हो गया है कि वह जो कुछ कमाता है, अपने लिए कमाता है,

अपने बच्चों के लिए कमाता है। कद्दू कभी कहता है कि मैं केवल ब्राह्मणों के लिए हूँ? बकरा क्या कहता है कि मैं कभी ब्राह्मण के यहाँ नहीं जाऊँगा, मुझे केवल मुसलमान काट सकता है? नहीं! कोई भी, जो समर्पित है, सबके लिए समर्पित है; जो निःस्वार्थ है, वह सबके लिए निःस्वार्थ है; जो परोपकारी है वह सबके लिए परोपकारी है; जो हितैषी है वह सबके लिए हितैषी है। न केवल मुसलमान का, न केवल हिन्दू का, न केवल ब्राह्मण का, बल्कि सबका। यही हमारे शास्त्रों की भावना है –

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः,
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्।

इस भावना को अब तुम लोगों को व्यवहार में उतारना पड़ेगा। यदि इसे उतार नहीं सकोगे तो तुम्हारी साधना सफल नहीं होगी। जब तक हम लोग हर एक व्यक्ति के दुःख के भागीदार नहीं हो सकते तब तक तो हम लोगों को अपने को मनुष्य कहने का अधिकार है ही नहीं। यह पक्की बात है। स्वामी शिवानन्द जी हमेशा यही कहते थे कि जो आदमी दूसरों का भला सोचता है, उसका दिल कोमल है, पर जो आदमी दूसरों का बुरा सोचता है उसका दिल बहुत सख्त है। जिसका दिल सख्त है उसके दिल को तो पहले अच्छी तरह से चूर्ण करना पड़ेगा। प्रकृति उसको चूर करती है। दिल कोमल होना चाहिए, भावना कोमल होनी चाहिए। तुम्हें दूसरे लोगों की पीड़ा का अनुभव होना चाहिए।

इससे पहले कि तुम्हें ब्रह्म का अनुभव हो, अपने प्रभु का दर्शन हो, ज्योति का दर्शन हो या ज्ञानोदय हो, दूसरे व्यक्ति के दर्द और व्यथा का अनुभव होना चाहिए। मन इतना सूक्ष्म होना चाहिए, इतना मुलायम होना चाहिए कि दूसरे के दुःख से द्रवित हो जाए। मनुष्य का हृदय इतना कोमल होना चाहिए कि वह दूसरे के दुःख को अपना दुःख समझ सके। दूसरे का दुःख-दर्द तुमसे जितना दूर है उतना ही ब्रह्म तुमसे दूर है। व्यक्ति को इतना संवेदनशील होना चाहिए कि वह दूसरे के कष्ट का अनुभव कर सके। तब जाकर वह संवेदनशील मन परमात्मा का बोध कर सकता है।

आत्मभाव

आध्यात्मिक जीवन का कुल सारांश तुम्हें बतला रहा हूँ। वेदांत का सर्वोत्तम उपदेश है – आत्मभाव। आत्मभाव किसे कहते हैं? आत्मभाव का सीधा

अनुवाद है अपने जैसा। अपने जैसा दूसरों के दुःखों को अनुभव करो। अपने जैसा दूसरों के कष्टों को अनुभव करना, यह आत्मभाव है और यही वेदान्त का सर्वोत्तम दर्शन है।

भगवान न तो निराकार हैं न साकार। नासदीय सूत्र में ऋषि कहते हैं, 'पता नहीं है। यदि है तो कहाँ है, वह देख रहा है कि उसी ने यह अजब तमाशा बनाकर रखा है या वह बनाकर मर गया।' अब इसमें हम अपना समय बेकार क्यों करें? अगर भगवान हैं तो यहाँ हैं और सबमें हैं। भगवान यदि सबमें हैं तो पहले वहाँ देखो जहाँ उन्हें तुम्हारी जरूरत है। मन्दिर वाले भगवान को तुम्हारी जरूरत इसलिए नहीं है कि वहाँ बहुत चढ़ाने वाले आते हैं। भरा-पूरा भण्डार है उनका। वे भगवान बहुत अमीर हैं। मगर जो भगवान गरीब हैं उनके पास जाओ। जो भगवान दुःखी हैं उनके पास जाओ। जिनके घर में बाल-बच्चे बिलख रहे हैं, उस घर में जाओ। जिस घर में चूल्हा नहीं जलता उस घर में जाओ, वहाँ देखो जहाँ तुम्हारी उसे जरूरत है। कितने उदाहरण दें? घण्टों दे सकते हैं, कोई ग्रन्थ नहीं कहता कि भगवान एक जगह है। सब धर्म एक ही बात कहते हैं – दीन-दुःखियों की सेवा, भगवान की सर्वोत्तम सेवा है। अमीर आदमी भी दुःखी हैं, उन्हें रात में नींद नहीं आती, व्यग्रता है, आकुलता है, तनाव है, ब्लड-प्रेशर है। उनके अन्दर के भगवान की भी सेवा करनी चाहिए। उन्हें तुम आसन-प्राणायाम सिखा देते हो, लेकिन जो भगवान भूखे में, बीमार में, अपाहिज में, निर्धन में और अनाथ में हैं, उनके लिए क्या सोचा है तुम लोगों ने? कोई बच्चा मेधावी है, पढ़ना चाहता है, मगर उसके पास फीस नहीं है; किसी लड़की की शादी पैसे न होने से नहीं हो पा रही है। कभी सोचा है इसके विषय में?

तुम बहुत आत्म-केन्द्रित हो, स्वार्थी हो। मैं, मेरी पत्नी और मेरा परिवार – बस यही तुम्हारा दायरा है। तुम्हारे भीतर *वसुधैव कुटुम्बकम्* की भावना होनी चाहिए। कुटुम्ब की शुरुआत पड़ोस से होती है, अपने गाँव से होती है। जब तक तुम्हारे

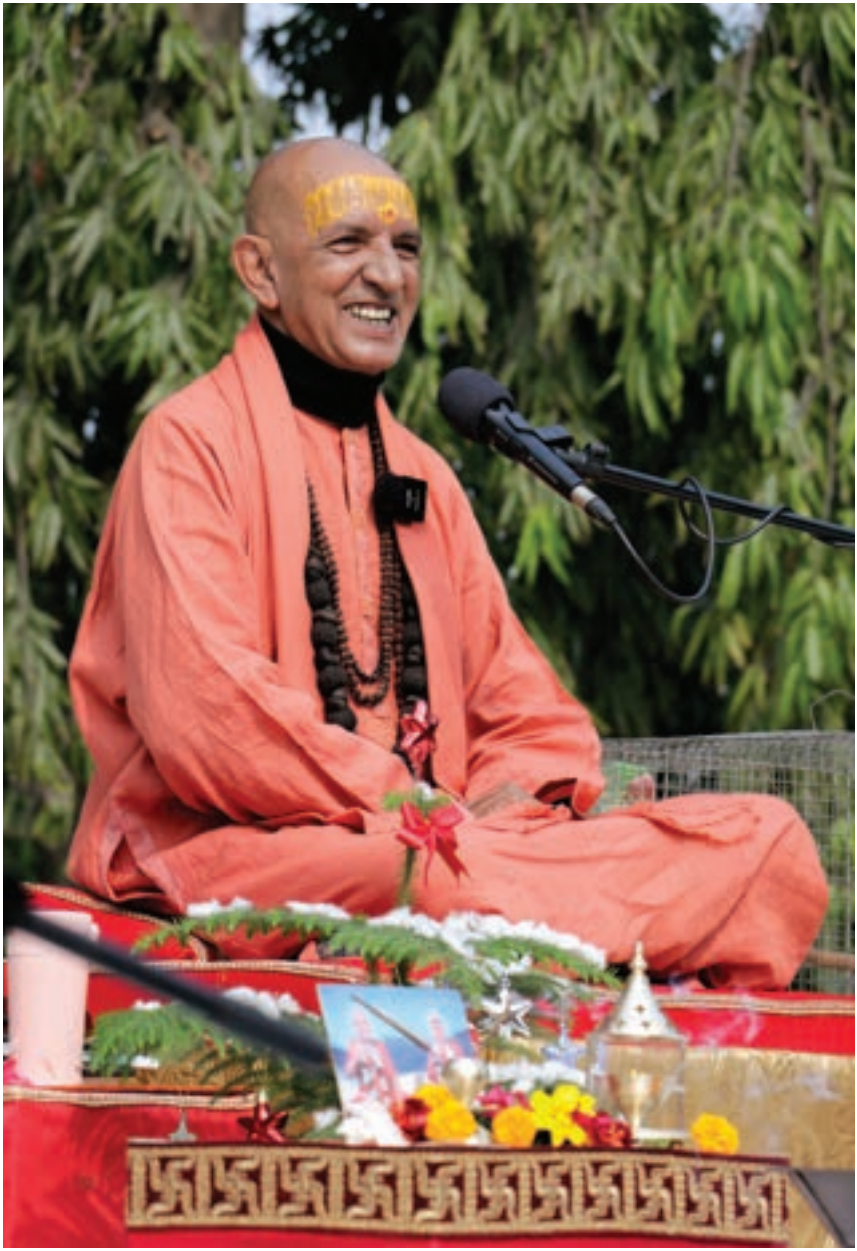

और उनके बीच में एक तार जुड़ेगा नहीं, उनका दुःख तुम्हारा दुःख, उनकी पीड़ा तुम्हारी पीड़ा, उनकी भूख तुम्हारी भूख नहीं बनेगी, तब तक आत्मभाव नहीं होगा। जब हम मानव सेवा करते हैं, पीड़ित, असहाय, जरूरतमंद लोगों की मदद करते हैं, उनसे सहानुभूति रखते हैं, अच्छा व्यवहार करते हैं, तब हम वास्तव में परमात्मा के लिए ही सब कुछ करते हैं।

सबके लिए प्रेम और करुणा

मानसिक सहायता का सर्वोत्तम मार्ग है प्रेम और स्नेह। प्रेम सबसे अच्छी चिकित्सा पद्धति है। सच्चा प्रेम कैसा होता है? सच्ची करुणा क्या है? यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे विषय में नकारात्मक सोचे, तुम्हे अस्वीकार करे, तुम्हारी निन्दा करे, तुम्हारा नुकसान करे, फिर भी तुम्हें उससे प्रेम करना चाहिए। यह प्रेम साधारण भावुक प्रेम नहीं, गहरा और स्थायी होना चाहिए। तुम मुझे न भी चाहो, तो कोई बात नहीं। फिर भी मैं तुम्हारी मदद करूँगा। तुम्हारे घर में आग लगी हो तो मैं फायर ब्रिगेड बुला लूँगा, मैं यह नहीं कहूँगा कि उस बदमाश का घर जल रहा है तो जल जाने दो, अच्छा हुआ, मुझे उसकी परवाह क्यों हो। तुम मुझसे प्रेम करते हो, इसलिए मैं तुमसे प्रेम करता हूँ – इस प्रकार का गणित अध्यात्म में नहीं चलता।

प्रेम करना सबसे कठिन है और द्वेष करना सबसे आसान। प्रेम मनुष्य में आदर्श व्यवहार को जन्म देता है, और द्वेष घृणापूर्ण या अप्रिय व्यवहार को। मैं यहाँ स्त्री-पुरुष के बीच के प्रेम की बात नहीं बोल रहा हूँ, यद्यपि वह भी प्रेम का एक पहलू है। मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूँ, जो प्राणी मात्र के प्रति करुणा की एक अभिव्यक्ति है। प्रेम की परिभाषा व्यापक करनी होगी, क्योंकि प्रेम शब्द का प्रयोग हम प्रायः पुरुष और स्त्री के बीच की भावना के अर्थ में करते हैं। मैं प्रेमी हूँ, तुम प्रेमिका हो, प्रेम को इसी अर्थ में समझा जाता है, किन्तु प्रेम की यह परिभाषा अपूर्ण है।

हो सकता है तुम्हें यह बात समझ में आ जाये, फिर भी इसे व्यवहार में उतारना बहुत कठिन होता है। प्रेम के बारे में बोलना बहुत आसान है। मैंने अभी पाँच मिनट के भीतर जो कुछ कहा है, उसको व्यवहार में उतारने के लिए जन्म-जन्मांतर लग जाते हैं। जो लोग सचमुच प्रेम करना चाहते हैं, उन्हें त्याग करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए, क्योंकि प्रेम का अर्थ है त्याग। प्रेम में लेना नहीं, केवल देना होता है। बिना शर्त देना। अपने आपको पूरा मिटा देने

की सीमा तक देना। यदि तुम प्रेम की बाजी हार भी जाओ तो भी कुछ नहीं बिगड़ेगा। सच्चा प्रेम हृदय की ज्योति है, चित्त की प्रभा है।

प्रेम करना बहुत कठिन है, क्योंकि तुम जानते ही नहीं कि प्रेम कैसे किया जाता है। प्रेम का मतलब क्या? मैं तुम्हारी हूँ, तुम मेरे हो। नहीं, यह प्रेम नहीं। सच्चा प्रेम कैसा होता है, हम जानते ही नहीं। प्रेम एक कला है, जिसे हमें सीखना चाहिए। प्रेम एक विज्ञान है जिससे हमें अवगत होना चाहिए। तुम्हारी भावुकता, तुम्हारी कामवासना को प्रेम नहीं कहते। हृदय की पवित्रता की अभिव्यक्ति है प्रेम, जो तब प्रकट होता है जब अपने मन में तुम पूर्ण सशक्त हो जाते हो। इसलिए संतों ने प्रेम पर इतना बल दिया है। अपने आपको प्रेम के लिए तैयार कैसे करना है? छोटे-छोटे करुणापूर्ण कृत्यों से।

दया के छोटे-छोटे काम कौने-से होते हैं? स्वामी शिवानन्दजी कहते थे, 'अपमान सहो, आघात सहो, यही सबसे ऊँची साधना है।' यदि तुम अपमान और चोट सह सकते हो, तो इसका मतलब है तुम बहुत मजबूत व्यक्ति हो। साथ ही वे यह भी कहते थे, 'सेवा करो, प्रेम करो, दान दो, पवित्र बनो, ध्यान करो, अनुभूति प्राप्त करो, अच्छे बनो, सत्कर्म करो, दयालु बनो, करुणावान् बनो।' वे इन दस अर्थपूर्ण शब्दों का उपदेश सबको देते थे। वे कंजूस नहीं थे। जो भी उनके पास आकर जिस भी चीज की याचना करता था, वे बोलते थे, दे दो उसे। एक बार उन्होंने पूरा आश्रम खाली कर दिया, हम लोगों के लिए एक कम्बल भी नहीं बचा, सब कम्बल बाँट दिये! जिसे जो पसंद हो उसे दे देते थे। कहने का मतलब यह है कि वे हमेशा दूसरों की भलाई ही सोचते थे। सत्संग में कभी हम लोगों के जैसा आध्यात्मिक उपदेश नहीं दिया। वे सबकी तारीफ करते और सबको कपड़े, फल, दवाई आदि देते रहते थे।

जिस व्यक्ति से तुम प्रेम करते हो, उसको तुम्हें जानना चाहिए। यदि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ, तो तुम्हारे बारे में मुझे सब-कुछ मालूम होना चाहिए। खासकर तुम्हारी मुसीबतें, तुम्हारी समस्याएँ, तुम्हारी इच्छाएँ। यदि मैं तुम्हें जानता ही नहीं, तुम्हारे विषय में मुझे कुछ मालूम ही नहीं, तो मैं तुम्हारी मदद नहीं कर सकता। इसलिए प्रेम बहुत कठिन चीज है। प्रेम और भक्ति का तत्त्व-ज्ञान ठीक तरह से समझ लेना चाहिए। जब तुम परस्पर प्रेम करना, सेवा करना, दयालु और परस्पर सहिष्णु होना, दूसरों की सहायता करना, और उनकी समस्याओं, परेशानियों, विचारों में शामिल होना सीख लोगे तब तुम्हारा परिवार, समाज और तुम्हारी दुनिया रहने की अच्छी जगह बन जायेगी।

योग, भक्ति और सेवा

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जब हम लोग मुंगेर में अपने गुरु, स्वामी सत्यानन्द जी के त्याग की स्वर्ण जयंती एक विश्व सम्मेलन के रूप में मना रहे थे, तब हम लोगों ने उनसे अनुरोध किया था कि स्मारिका के लिए वे एक संदेश हमें दें, ताकि हमलोगों को उस संदेश से प्रेरणा मिले। उन्होंने यह संदेश भेजा – 'तुम मेरी त्याग स्वर्ण जयंती मना रहे हो। मैं आज भी उस क्षण को याद करता हूँ, जिस क्षण मैंने अपने गुरु के सान्निध्य में अपने आप को समर्पित किया था। वही क्षण आज तक मेरी स्मृति में अंकित है। जिसे तुम त्याग स्वर्ण जयंती कहते हो वह तो मेरे लिए समर्पण-मुहूर्त है।' यह विचारधारा एक ऐसे व्यक्ति की है, जो योगविद्या में निष्णात है, जिसने योगविद्या को सिद्ध कर लिया है, जिसने मानव-चेतना की पराकाष्ठा को पार कर लिया है। सामान्य रूप से हमलोग प्राप्ति के क्षण को याद रखते हैं, समर्पण या पुरुषार्थ के क्षण को नहीं।

श्री स्वामीजी ने तो एक विश्वव्यापी आंदोलन खड़ा करके एक क्षण में सबकुछ त्याग दिया, कहा, 'मैंने तो इसके लिए संन्यास नहीं लिया था। मैंने जब संन्यास लिया था तब उस समय मेरे सामने जो लक्ष्य था, वह था आत्मानुभूति, ईश्वर की प्राप्ति। मैंने जो कर्म किये, वे कर्म-वृद्धि के लिए नहीं, बल्कि उनके क्षय के लिए किये। और अब वह समय आ गया है कि मैं कर्म से मुक्त हो गया हूँ। अब मुक्त ही रहना चाहता हूँ।'

मैं उन्मुक्त गगन का पंछी, मैं अजस्र अमृत की धारा।
मैं प्रशान्त सामोद सनातन, मैं खुशियों का दीप्त सितारा॥

यह उनकी वाणी है। जब वे आश्रम से निकले केवल दो धोती के साथ निकले। वे तो बिना पैसे के निकले थे, लेकिन आश्रम की ओर से दक्षिणा के रूप में जबरदस्ती उनकी झोली में एक सौ आठ रुपये रख दिये जाते हैं। अपनी यात्रा के दौरान वे विभिन्न तीर्थों में भ्रमण करते हैं। उनका चातुर्मास त्र्यम्बकेश्वर की एक गोशाला में बीतता है और वहाँ पर भगवान त्र्यम्बकेश्वर का आदेश उन्हें मिलता है – 'मेरी श्मशान भूमि में जाओ और चौबीसों घण्टे सतत् नाम-स्मरण में अपने आप को लीन कर दो।' ऐसा ही उन्होंने किया। भगवान शिव की

श्मशान भूमि में एक अवधूत के रूप में वे अपनी धूनी जलाते हैं। जो संन्यासी के रूप में विश्व भ्रमण करके योग की पताका को विश्व में चारों तरफ फहरा चुके थे, बड़े-बड़े राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री जिनके सामने नतमस्तक होते थे, वही महामानव खुले आसमान के नीचे रहने लगे, वस्त्रों का त्याग कर दिया। वे देह के अनुभवों, देह के बंधनों के परे चले गये, और वहाँ पर कठिन वैदिक साधनाओं एवं व्रतों का पालन करने लगे। कठोर पंचाग्नि तप किया, शीतकाल में बाहर रहते थे, गर्मी में बाहर रहते थे, पूर्ण संयम एवं नियंत्रण के साथ।

श्री स्वामीजी कहा करते थे कि मैंने अस्पताल में मरने के लिए संन्यास नहीं लिया है, मुझे गंगा के तट पर घूमने दो, शिव का नाम मेरे हृदय में हो, माँ का नाम मेरे होठों पर हो, खुले आसमान के नीचे रहूँ और जब मैं इस देह का त्याग करूँ तो किसी को मालूम भी न हो। जब मेरे प्राण शरीर से निकलें तो समाधि में निकलें, अस्पताल की शैय्या पर नहीं। संन्यासियों के लिए उन्होंने यह एक आदर्श स्थापित कर दिया है।

जब एक साधक स्वयं को ईश्वरेच्छा को समर्पित कर देता है, तब वह भगवान की छत्रछाया में जीता है। हमलोगों ने तो देखा है कि सभी कुछ उनके अनुकूल होते गया। परिस्थितियाँ उनके अनुकूल हुयीं, वातावरण उनके अनुकूल हुआ। पंचाग्नि की अग्नि उनकी देह को झुलसा देती, लेकिन उन्हें ताप नहीं लगता। ठण्ढ में जब ठण्ढी हवा बहती तो हमलोग ठिठुरते रहते, कम्बल पर कम्बल ओढ़ते, लेकिन वे सौम्य भाव प्रदर्शित करके अपनी साधना में मग्न रहते। एक विलक्षण प्रतिभा का महामानव ही ऐसा कर सकता है, जो समय-समय पर धरती पर उतरता है और लोगों को एक मार्ग बतलाता है।

सेवा का मार्ग

मकर संक्रान्ति के दिन गुरुजी ने साधना से उठकर कहा, 'मुझे भगवान से आदेश प्राप्त हुआ है कि जो सुविधा हमने तुम्हें प्रदान की है, तुम वह सुविधा अपने पड़ोसियों को प्रदान करो। मेरे पास तो कुछ नहीं है, इसलिए यह कार्य-भार मैं तुम्हें सौंपता हूँ। तुम मेरे इस संकल्प को, ईश्वर के इस आदेश को पूरा करो।' हमलोग उस आदेश का पालन करने के लिए कटिबद्ध हो गये और वहाँ पर हमलोगों ने शिवानंद मठ के माध्यम से योजना बनाई कि सबसे पहले वहाँ के निर्धनों के लिए आवास की व्यवस्था हो। उसके पश्चात् परिवार में एक व्यक्ति के लिए रोज़गार हो, कम-से-कम वह दो-तीन सौ रुपये कमा सके, उसे थोड़े-से पैसों के लिए हाथ फैलाना न पड़े। तीसरी प्राथमिकता हमलोगों ने चिकित्सा-सेवा प्रदान करने को दी, और चौथे नम्बर पर शिक्षा की व्यवस्था।

अगर योग की ओर हमलोगों का ध्यान चालीस प्रतिशत है, तो शोषित और पीड़ित समाज की सहायता की ओर साठ प्रतिशत। संन्यासियों का कार्य-क्षेत्र निजी व्यक्तित्व ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व है। उनका लक्ष्य ईश्वर-अनुभूति ही नहीं, बल्कि दूसरों की ओर सेवा के लिए हाथ बढ़ाना भी है। पोथी पढ़ने से आदमी तोता बनता है, सेवा करने से हनुमान। अगर हनुमान बनना है तो हनुमान की तरह कर्मरत रहो। लेकिन कर्म अपने लिए नहीं, ईश्वर को सुपुर्द करके, ईश्वर को सभी प्राणियों में देखते हुए करो। तभी ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है, उससे पहले नहीं।

हमें अपने विचारों को, अपने दृष्टिकोण को, अपनी परिभाषाओं को बदलना पड़ेगा। हमारे लिए तो हमारी काली, दुर्गा और लक्ष्मी यहाँ पर बैठी हैं। हमारे शंकर, हमारे विष्णु, हमारे गणपति यहाँ पर बैठे हैं, हम उन्हें देवालयों में नहीं खोजते। अगर यह भाव नहीं रख सकते, तो फिर तुम मनुष्य नहीं हो, इस बात को याद रखना। प्रत्येक प्राणी में, प्रत्येक मनुष्य में दैवी शक्ति को देखना पड़ेगा।

अनुशासन, संयम और संस्कृति

योग की शुरुआत न ध्यान से होती है, न चित्त की वृत्तियों के नियंत्रण से। योग की शुरुआत होती है अनुशासन से। जब तक अनुशासन सिद्ध नहीं होता, तब तक आप एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। भारतीय परम्परा में अनुशासन सिखलाया जाता है, दूसरा कुछ नहीं। हमारी संस्कृति में चौबीस प्रकार के यम तथा चौबीस प्रकार के नियमों की चर्चा की गयी है। यही एक राष्ट्र है

जहाँ पर अनुशासन की कला सिखलाई जाती है। जरा सोचिये, आत्मविद्या को सीखने पाश्चात्य देश के लोग कहाँ जाते हैं। क्या आपने कभी सुना है कि अमेरिका का आदमी आत्मविद्या को, आत्मानुशासन की कला सीखने के लिए ऑस्ट्रेलिया जाता है? विश्व का मनुष्य, चाहे वह कहीं का भी हो, आत्मानुशासन सीखने के लिए एक ही राष्ट्र में आता है, और वह राष्ट्र है भारत। यह कभी नहीं कहना कि भारत आज जगत् गुरु नहीं है। आज भी भारत जगत् गुरु है, क्योंकि यहीं पर विद्या का वह केन्द्र है। भले ही आप लोग पाश्चात्य जीवन शैली को अपनाने लगे हैं, उससे हमें फर्क नहीं पड़ता। हम तो धोती पहनकर अपना काम करते रहेंगे।

एक बात और बतला दूँ, आप जो कहते हैं कि पाश्चात्य संस्कृति हमारे देश में आकर यहाँ चरित्र को बदल रही है, यह बात ठीक नहीं है। विदेशों में संस्कृति नाम की कोई चीज नहीं है, सिद्धान्त नहीं है। मैं धर्म की नहीं, संस्कृति की बात कर रहा हूँ। विश्व में धर्म तो अनेक हैं, और सब अपने-अपने स्थान पर सही हैं, लेकिन संस्कृति की शिक्षा भारतवर्ष में ही मिलती है, और कहीं नहीं।

सम्यक् कृतिः इति संस्कृतिः – संस्कृति का मतलब होता है हमारे कर्मों का संतुलित, सुयोजित और संयत होना। तब कर्मो का रूप संस्कृति का रूप धारण करता है। संस्कृति केवल नाच-गाना-बजाना नहीं है। आज सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नाम पर हमलोग तो नौटंकी और नाच-गाना देखने जाते हैं। इस विचारधारा को बदलिए और आज ही बदलिए। संस्कृति का संबंध मनुष्य के चारित्रिक उत्थान से है। जहाँ पर चरित्र का उत्थान नहीं हो सकता वहाँ

संस्कृति भी नहीं है। लोग कहते हैं कि पाश्चात्य सभ्यता में स्वतंत्रता है। वहाँ स्वतंत्रता नहीं है, वहाँ तो मर्यादाओं का उल्लंघन होता है। मर्यादाओं के अतिक्रमण को वे लोग स्वतंत्रता कहते हैं। सच्ची स्वतंत्रता अगर है, तो भारत में है। स्वतंत्रता का मतलब होता है, मर्यादाओं के बीच रहते हुए सुनियोजित ढंग से कर्म करना। इस बात को आज समझना चाहिए।

योग – एक जीवन-विज्ञान

मैं यह सब इसलिए कह रहा हूँ कि योग का संबंध केवल शरीर, मन, भावना और अध्यात्म से नहीं, सम्पूर्ण मनुष्य जीवन से है। योग तो एक जीवन-विज्ञान है। आप योग के प्रति आकृष्ट भले ही किसी कारण से हों, लेकिन योग आपको जागरूक बनाता है, सजग बनाता है। यह बतलाता है कि तुम्हारी ये सीमाएँ हैं, तुम्हारा यह क्षेत्र है, जिसमें तुम्हें जीना है। अनुशासित रूप से जीओ, मन को संयत करके जीओ, विचारों और भावनाओं को संयत रखकर जीओ, और संयम को प्राप्त करने की कला योगविद्या से सीख लो। जब आप योग सिद्ध कर लेते हैं, तब आप स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं, सुख, शान्ति और आनंद का अनुभव करते हैं। यही हमलोगों का योग है।

योग को केवल अभ्यासों तक सीमित नहीं रखना, बल्कि अपने दैनिक जीवन में उतारना। जब योग आपके दैनिक व्यवहार में उतरेगा तब आपके विचार पटरी पर चढ़ेंगे। विचारों को पटरी पर चढ़ाना, यह योग का लक्ष्य है। जब हमलोगों का जीवन पटरी पर लग जाता है और पैसेन्जर गाड़ी सुपर-फास्ट में बदल जाती है, तब उस विकास की गति को कोई रोक नहीं सकता। वह हमें सीधे ईश्वरत्व की ओर ले जाती है।

योग अपनी भावना को जाग्रत करने की कला, क्रिया, विज्ञान, दर्शन और सिद्धांत है। योग का सिद्धांत सांख्य दर्शन है और योग का अन्त होता है वेदान्त में। ये तीनों मिलकर जीवन को पूर्ण बनाते हैं। सांख्य सिद्धान्त, योग अभ्यास और वेदान्त अनुभव – इन तीनों को अपने जीवन में उतारने के लिए बौद्धिक दृष्टि से नहीं, व्यावहारिक दृष्टि से प्रयत्नशील रहना और यहाँ से जाने के पूर्व एक संकल्प लेना – 'व्यक्तिगत जीवन में योगाभ्यास, भावनात्मक जीवन में भक्ति का अभ्यास और सामाजिक जीवन में सेवा का अभ्यास।' ये तीन संकल्प लेकर यहाँ से जाना। तब हम मानेंगे कि आपने योग को अपने जीवन में स्थान दिया है।

गुरु-सेवा

स्वामी सत्यसंगानन्द सरस्वती

गुरु-सेवा का अर्थ प्रायः निःस्वार्थ भाव से गुरु की सेवा करने से लगाया जाता है। इसका उद्देश्य मन को स्थूल इच्छाओं से मुक्तकर उसे शुद्ध करना है। गुरु-सेवा की यह व्याख्या आध्यात्मिक जीवन में इसकी प्रासंगिकता को कुछ हद तक उजागर करती है, किन्तु यह इसका अपूर्ण अर्थ है। गुरु-सेवा का अन्तर्निहित महत्त्व एवं प्रभाव अत्यंत वैज्ञानिक है। यह आपके शरीर के शक्ति-प्रवाह से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा है।

आंतरिक शक्ति की अभिव्यक्ति

आपके अन्दर शक्ति का एक स्रोत है जो स्वयं को प्रकट करना चाहता है। जब यह शक्ति जाग्रत होकर एक स्वरूप लेती है, तब इसकी तुलना एक बाँध की दीवार के टूटने से की जा सकती है, जिसका सारा जल तीव्र वेग से बहता हुआ समुद्र में जा गिरता है। यदि बहाव का मार्ग साफ है तो जल-प्रवाह की शक्ति से कोई गंभीर नुकसान नहीं होगा, किन्तु यदि उस मार्ग में भवन और कारखाने होंगे तो वे इस दुर्घटना के परिणामस्वरूप निश्चित रूप से विनष्ट हो जायेंगे। इसी प्रकार जब शक्ति स्वयं को प्रकट करने लगे तो स्वयं को द्वन्द्व, तनाव एवं गंभीर क्षति से बचाने के लिये उसे सहजता से एवं शान्तिपूर्वक प्रवाहित होने देना चाहिये। यदि आपकी शक्ति सहजतापूर्वक क्रियाशील होगी तो आप परमानन्द का अनुभव करेंगे, किन्तु यदि वह विरोधात्मक स्थिति में होगी तो आप अपार कष्ट का अनुभव करेंगे।

सर्वप्रथम हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि यह शक्ति किसी भी व्यक्ति में किसी भी समय जाग्रत होकर प्रकट हो सकती है। तथापि यह जागरण एक आकस्मिक प्रक्रिया नहीं है। यह तो धीरे-धीरे एवं अनेक स्तरों से गुजरने वाली प्रक्रिया है। आपके अन्दर जब शक्ति का जागरण होने लगता है तभी आप गुरु की खोज करते हैं या किसी आश्रम में जाते हैं। बीमारी, मानसिक संकट, निराशा, उदासी, वैवाहिक या अन्य सम्बन्धों में विफलता जैसे बाह्य कारण तो सिर्फ बहाना हैं। ये सभी तो आपके अन्दर प्रारम्भ हुई एक आन्तरिक प्रक्रिया की बाह्य अभिव्यक्तियाँ हैं।

जब आप सर्वप्रथम गुरु या किसी आध्यात्मिक महापुरुष के सम्पर्क में आते हैं तो इसी प्रकार की घटनाएँ घटती हैं। आपके अन्दर शक्ति का स्वाभाविक एकत्रीकरण, स्थानान्तरण एवं विस्फोट होता है। हो सकता है कि आप इन घटनाओं के प्रति सजग न हों, किन्तु निस्सन्देह ऐसा हो रहा है। गुरु से यह सम्पर्क इतना शक्तिशाली होता है कि ये घटनाएँ सिर्फ उनकी तस्वीर देखने या उनके द्वारा लिखित पुस्तक पढ़ने से ही घटित हो सकती हैं। यह आवश्यक नहीं कि उनसे आपका व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हो। आप अनजाने में ही आत्मिक रूप से स्वप्न या संचार प्रक्रिया द्वारा शक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

इस शक्ति का निर्माण एवं अभिव्यक्ति चाहे जैसे भी हो, आप अपने व्यक्तित्व में क्रमिक रूपान्तरण एवं परिवर्तन पायेंगे। इस सम्बन्ध में आश्चर्यजनक बात यह है कि यह रूपान्तरण आपके लिये सदैव हितकर या लाभदायक नहीं होता। अतः आप भयभीत हो जाते हैं। आपके व्यक्तित्व की गहराई में जड़ जमाई हुई जटिलताएँ तथा अपराधभाव प्रकट होने लगते हैं। आपके अन्दर अनेक चीजों के प्रति उन्माद एवं मनोविकार उत्पन्न हो जाता है। ऐसा उन चीजों के प्रति भी हो सकता है जिनसे आप पहले आकर्षित होते थे या जिन्हें पसन्द करते थे। यदि आपने अपने व्यक्तित्व के किसी ऐसे अंश का दमन किया है जिसे आप नापसन्द करते थे तो उसका घृणित स्वरूप निश्चित रूप से पुनः प्रकट होगा।

आपके चेतन विचारों के अलावा आपके व्यक्तित्व का अन्य आयाम भी है जो अवचेतन एवं अचेतन विचारों से सम्बद्ध है। ये विचार प्रायः अप्रकट रहते हैं। आपको उनके अस्तित्व के बारे में कोई जानकारी ही नहीं होती। किन्तु जब शक्ति जागृत होने लगती है तब वे प्रकट होने लगते हैं। यदि वे सुखद नहीं होते तो आपके जीवन में द्वन्द्व और तनाव उत्पन्न करते हैं। आप चेतन विचारों का सामना तो कर सकते हैं, किन्तु अचेतन विचारों का विस्फोट होने पर असुरक्षा का अनुभव करने लगते हैं, आप उसे व्यवस्थित करने में सक्षम नहीं हो पाते।

आपको यह समझना है कि आपके अन्दर उत्पन्न शक्ति आपके व्यक्तित्व के प्रधान पहलू का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। दमन के कारण आपके व्यक्तित्व की कुछ विशेषताएँ लम्बे समय के अन्तराल में अधिकाधिक सशक्त हो जाती हैं। जब आपके अन्दर शक्ति की जागृति होती है तो वह स्वाभाविक रूप से उसी मार्ग की ओर आकृष्ट होती है तथा स्वयं को आपके व्यक्तित्व की उन्हीं विशेषताओं के रूप में प्रकट करती है।

मनुष्य इन्हीं परिस्थितियों में उलझा हुआ है। उसके जीवन में दुःख-तकलीफ एवं सौंदर्य के अभाव का यही कारण है। सुख एवं सौन्दर्य की प्राप्ति तभी हो सकती है जब यह शक्ति निर्बाध एवं समन्वित होकर एक लय में सहज रूप से प्रवाहित हो। और तब जीवन की हर एक परिस्थिति आनंददायक हो जाती है। तब नौकरी, बच्चे, पति या माता-पिता दुःख एवं कष्ट का कारण नहीं हो सकते। तब आप पूर्ण संतुलन प्राप्त कर लेते हैं। अन्यथा आप बेचैनी, असन्तोष, आन्तरिक अशान्ति, शारीरिक जर्जरता एवं मानसिक उदासी का अनुभव करेंगे। आप अपने वातावरण में घुटन का अनुभव करेंगे। आपकी इच्छा अपनी वर्तमान परिस्थिति से भागकर अन्यत्र आश्रय खोजने की होगी। ऐसी स्थिति में भय एवं चिन्ताएँ बढ़ती हैं तथा आप जीवन का सामना करने में स्वयं को अक्षम पाते हैं। इन्हीं कारणों से विवाह असफल होते हैं, परिवार बिखरते हैं, हत्याएँ, अपराध और बलात्कार होते हैं, आप निराशा का अनुभव करते हैं एवं हतोत्साह हो जाते हैं।

अतः शक्ति के उत्पन्न होने से अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या उसकी दिशा, प्रवाह तथा अभिव्यक्ति को नियन्त्रित करना है। आप निरन्तर नई शक्तियाँ पैदा कर रहे हैं। जीवन का अर्थ ही है – सतत् जीवनी शक्ति पैदा करने की क्षमता। यह एक विराधोभास ही है। आप निरन्तर शक्ति पैदा करते जा रहे हैं,

किन्तु आप यह नहीं जानते कि इसका रचनात्मक उपयोग किस प्रकार किया जाए। जब यह शक्ति उत्पन्न नहीं होती तो आप अस्वस्थता का अनुभव करते हैं। किन्तु जब यह उत्पन्न होने लगती है तब आप पुनः स्वयं को अस्वस्थ अनुभव करते हैं। प्रथम अस्वस्थता का कारण कमजोरी या शक्ति का अभाव है। द्वितीय अस्वस्थता का कारण उत्पन्न हुई शक्ति है जो आपके लिये भार बन गई है। आप इसे संतुलित एवं रचनात्मक बनाने में सक्षम नहीं हैं।

अतः अपनी समस्याओं को समझने तथा उनका समाधान करने के लिये हमें एक पद्धति का पता लगाना होगा जिसके द्वारा इस शक्ति को सन्तुलित, सही मार्गों से प्रवाहित तथा रचनात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया जा सके। इसी सन्दर्भ में हमारे जीवन में गुरु एवं गुरु-सेवा की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण हो जाती है।

गुरु के साथ सम्बन्ध

जब आप सर्वप्रथम गुरु के सम्पर्क में आते हैं तो आपके शक्ति-चक्र का विघटन तथा पुनर्गठन होता है। हो सकता है कि आप इसके लक्षणों को न पहचान सकें, किन्तु रूपान्तरण प्रारम्भ होने लगता है। जब आप गुरु से मिलते हैं तब आप आनन्द से नृत्य करने लग सकते हैं या आपके अन्दर पूर्णतया नकारात्मक भाव भी उत्पन्न हो सकते हैं।

गुरु से मिलन विस्फोटक का कार्य करता है। आपके अन्दर जो कुछ भी है, वह तीव्र गति से सतह पर आता है। इस समय आप जो कुछ भी अनुभव करते हैं, वह आपके चित्त की संरचना का परिणाम है, तथा आपके संस्कारों से सम्बद्ध है। अनेक बार इन संस्कारों से आपका परिचय नहीं होता। अतः गुरु से मिलने पर जो अनुभव होते हैं, उनसे आप आतंकित हो जाते हैं। मैंने अनेक कट्टर एवं कटु स्वभाव वाले व्यक्तियों को गुरु के सामने बच्चों की तरह फूट-फूट कर रोते देखा है। ऐसे लोग अपनी प्रतिक्रियाओं पर आश्चर्यचकित हो जाते हैं, वे इन्हें समझ नहीं पाते। वास्तव में होता यह है कि जिस जागरण के चलते आप गुरु के पास आये, वह उनके सम्पर्क में आने के बाद नवीन तथा सुदृढ़ बन जाता है। उनकी उपस्थिति शक्ति के जागरण की प्रक्रिया को और अधिक सक्रिय, सुदृढ़ एवं प्रज्वलित करती है। गुरु एक दर्पण का कार्य करते हैं। उस दर्पण में आपका व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है तथा अनजाने में ही आप अपने स्वरूप को देखने लगते हैं।

गुरु से इस प्रथम सम्पर्क के साथ ही एक आन्तरिक रूपान्तरण प्रारम्भ हो जाता है। सभी चीजें बदलने लगती हैं तथा अधिकतर लोगों के लिए जीवन पुनः पहले जैसा नहीं रह जाता। निश्चित रूप से शक्ति का अधिकाधिक जागरण एवं उत्पादन होने लगता है। इस स्थिति के लिये आपको स्वयं को तैयार करना है। इस स्तर पर पहुँचने पर गुरु-सेवा की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण तथा निर्णायक होती है।

जब आप गुरु-आश्रम में रहकर गुरु-सेवा करते हैं तो वास्तव में अपने शरीर में शक्ति के प्रवाह को सन्तुलित कर रहे हैं तथा उसे उन क्षेत्रों की ओर प्रवाहित कर रहे हैं जहाँ उसका सर्वाधिक लाभ मिल सके। गुरु निःस्वार्थता के प्रतीक होते हैं। उनका लक्ष्य व्यक्ति की चेतना को अधिकाधिक विकसित करना तथा ऊँचा उठाना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये ही वे हमारे बीच हैं। उनके उद्देश्य की पवित्रता तथा उनकी उपस्थिति के कारण ही हम निःस्वार्थपूर्ण कार्य करने के लिये तत्पर होते हैं। इसके अतिरिक्त, आश्रम का वातावरण

ही निःस्वार्थ सेवा की नींव पर बना होता है। निहित स्वार्थ से युक्त लोगों के लिये वहाँ कोई स्थान नहीं होता। वे ऐसे वातावरण में टिक ही नहीं सकेंगे तथा स्वेच्छा से विदा हो जायेंगे।

अतः आप जब भी आश्रम आयें, चाहे किसी समस्या या कठिनाई के कारण ही, यह आवश्यक है कि आप तन-मन से गुरु-सेवा में संलग्न हो जायें। गुरु-सेवा आपके शरीर में शक्ति के प्रवाह को सन्तुलित करती तथा उसे आपके अन्दर के उच्चतर केन्द्रों की ओर निर्देशित करती है। अन्त में ये केन्द्र सक्रिय होकर कार्य करने लगते हैं तथा आप पाते हैं कि आप अधिक रचनात्मक, अन्तर्दर्शी एवं शान्त या समरूप होने लगे हैं। पहले गड़बड़ी यह थी कि आपकी शक्ति जाग्रत तो हो गई थी, किन्तु आपके व्यक्तित्व के कठोर अवरोधों तथा मानसिक अनुबन्धों के कारण उच्चतर केन्द्रों की ओर इसका प्रवाह अवरुद्ध था। इसकी अभिव्यक्ति का स्वरूप नकारात्मक था।

तथापि जब आप आश्रम में आते हैं और वहाँ गुरु की सेवा करते हैं या उनके लिये कार्य करते हैं तो आप अनजाने में ही शक्ति का मार्ग साफ कर रहे हैं तथा उसे उच्चतर एवं अधिक शक्तिशाली केन्द्रों की ओर बढ़ने का अवसर दे रहे हैं। आश्रम में रहते हुए जब आप कठोर परिश्रम करते हैं तब अपने अन्दर पूर्ण परिवर्तन पाते हैं। आप बेहतर अनुभव करते हैं, आपकी सोच अधिक स्पष्ट और सही हो जाती है। वास्तव में आप एक बार पुनः जीवन को उचित रूप से देख सकते हैं। तदुपरान्त जब आप घर वापस लौटते हैं तो स्वयं को आसानी से एक बार पुनः अपने वातावरण के अनुकूल बनाने में सक्षम होते हैं। अब आप ऐसी अनेक चीजों के बारे में सजग होते हैं जिन्हें आप पहले नहीं समझ पाये थे।

अनासक्त कर्म

गुरु-सेवा के पीछे निःस्वार्थ कर्म का सिद्धान्त है। यह कर्म आसक्ति तथा लाभ की भावना से रहित होकर किया जाता है। इसका अभ्यास आपकी शक्ति को सन्तुलित करने में इतना प्रभावकारी क्यों है? उत्तर स्पष्ट है। निःस्वार्थ प्रयोजन के कारण आपका अहंकार बीच में नहीं आता तथा आप अपने द्वन्द्वों तथा तनावों से प्रत्यक्ष मुकाबला किये बगैर उपमार्ग से होकर निकल जाने में सफल होते हैं। वे अभी भी मौजूद हो सकते हैं, किन्तु अब वे आपको प्रभावित नहीं करते, क्योंकि आपकी शक्ति अन्य दिशाओं में मुड़ गई है।

गुरु-सेवा का अभ्यास आश्रम में ही किया जा सकता है, अपने घर पर नहीं। जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है, आश्रम का वातावरण उच्चतर सजगता के विकास में सहायक होता है और इस प्रकार आपकी शक्ति को अवरोध-रहित होकर प्रवाहित होने का अवसर मिलता है। यदि आप घर के वातावरण में रहते हैं तो पाते हैं कि शक्ति को सन्तुलित करना एक अत्यधिक कठिन कार्य है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आप जहाँ रहते हैं वहाँ की परिस्थिति बुरी या विकृत है। बात सिर्फ इतनी है कि वहाँ के वातावरण में आप विशेष परिस्थितियों का सामना करने में सक्षम नहीं हो पाते। कोई भी परिस्थिति या घटना एक नकारात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न कर देती है। जिन लोगों को आप निकट से जानते हैं, उनके प्रति घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, एवं अन्य नकारात्मक भावों से आप शायद ही ऊपर उठ पाते हैं। किन्तु आश्रम की परिस्थिति बिल्कुल भिन्न होती है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी आन्तरिक शक्ति को विकसित करने में लगा है। वहाँ के वातावरण में कर्मयोग की भावना व्याप्त रहती है तथा आप भी उससे प्रेरित होते हैं। इसके अतिरिक्त, इतने सारे आध्यात्मिक प्रवृत्ति के लोगों से उत्पन्न सकारात्मक तरंगें भी आपकी शक्ति को सन्तुलित करने में सहायक होती हैं।

धीरे-धीरे अन्त में गुरु-सेवा के प्रति यह भाव आपके व्यक्तित्व का, आपकी प्रकृति का अंग बन जाता है तथा इस हेतु आपको तनिक भी प्रयास नहीं करना पड़ता। आप जीवन की सभी परिस्थितियों का मुकाबला सहजता एवं धैर्य से करते हैं। जीवन के उतार-चढ़ाव आपको पराजित नहीं कर पाते। आप उन्हें आसानी से निपटा सकते हैं। तदुपरान्त आप अपने घर वापस जा सकते हैं तथा माता, पिता, पति, पत्नी, पुत्र या पुत्री की भूमिका निभा सकते हैं।

शक्ति के जागरण को सही एवं सुव्यवस्थित रूप से संभालना होता है। अति संवेदनशील, भावनात्मक या नकारात्मक होने का कोई कारण नहीं है। उस समय आपके लिये आश्रम आवास, सरल जीवन, उचित आहार, कर्मयोग तथा गुरु की सकारात्मक शक्ति का अत्यधिक महत्त्व होता है। मात्र इसी चिकित्सा द्वारा आप पुनः अपने पैर पर खड़े हो सकते हैं। चिकित्सक, मनोचिकित्सक या दवाई की गोलियाँ आपकी सहायता नहीं कर सकतीं। एक महीना या उससे अधिक समय तक आश्रम में रहकर गुरु-सेवा करने से आपका बहुत कल्याण हो सकता है।

सेवा ध्यान से श्रेष्ठ है

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

सेवा ध्यान की अपेक्षा श्रेष्ठतर योग है। शेर की तरह दहाड़ो, शेर की तरह काम करो। अनुभव करो कि सभी कार्य उसी परमात्मा की पूजा हैं। यह उसकी ही इच्छा है जो हमारे मन, मस्तिष्क और शरीर में कार्य कर रही है।

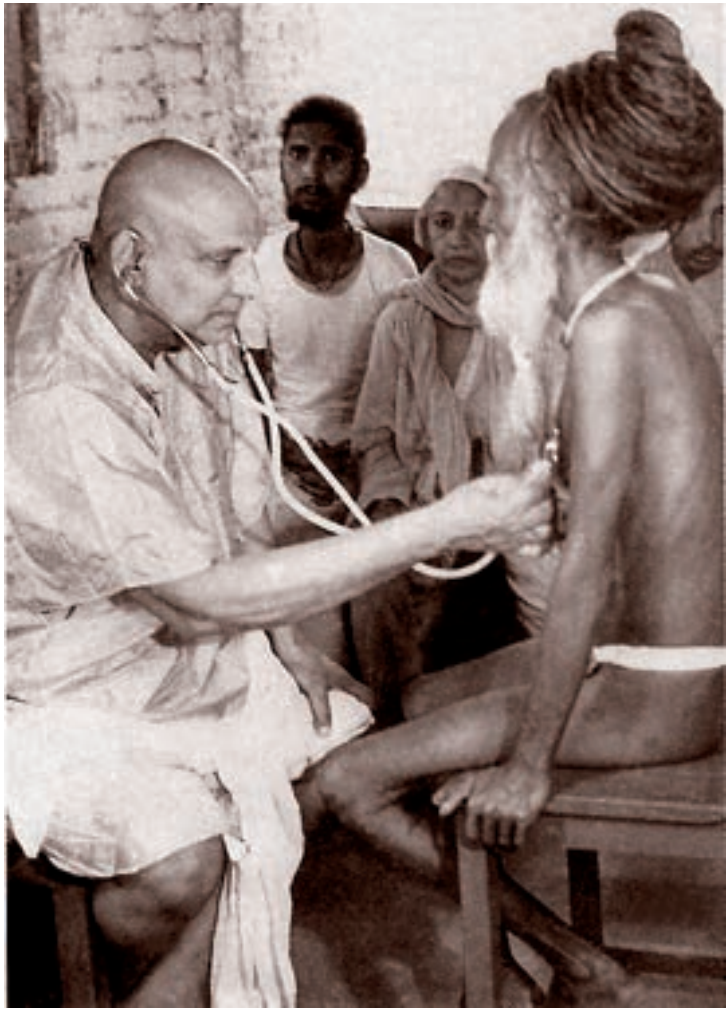

लोगों की सेवा मन लगाकर करें, पूरे उत्साह और बल के साथ करें, बिना थके या रुके करें, बिना चेहरे पर शिकन लाए करें। आप पूरी शक्ति से सेवा करेंगे तो वह योग बन जाएगा। आप को ध्यान करने की आवश्यकता नहीं, जप करने की आवश्यकता नहीं, नाक बंद करके प्राणायाम करने की आवश्यकता नहीं। हर श्वास, हर क्रिया को योग में बदल दीजिए। यह भाव रखें कि आपका तन-मन सिर्फ परमात्मा के लिए के लिए कार्यरत है। आपको जल्द ही उस परम चेतना की प्रत्यक्ष अनुभूति होगी।

कर्म ही पूजा है, कर्म ही ध्यान है – इस बात को कभी मत भूलिए। आपको सेवा और ध्यान के माध्यम से अपने आप को आगे बढ़ाना है। सही भावना से किया हुआ हर कार्य योग है। आपका सबसे पहला कर्त्तव्य सभी के सामने नतमस्तक होना है, चाहे वह बड़ा हो या छोटा। एकता और समरसता का भाव रखें। मन को हर स्थान और परिस्थिति में एक जैसा रखने का प्रशिक्षण दें, तभी आप मजबूत होंगे।

हर चीज में भगवान का वास है, बस उसे अनुभव करने की जरूरत है। अच्छाई और सदाचार हमें भगवान के पास ले जाते हैं, और प्रेम हमें भगवान से मिला देता है। जो व्यक्ति दूसरों की सेवा करता है वह सदा संतुष्ट और सुखी रहता है, उसे दैवी आशीर्वाद प्राप्त होता है। यही सच्ची साधना है। गुफाओं में रहने की बजाय टाइपराइटिंग करें, किताबों का सम्पादन करें, प्रेरक लेख लिखें। यह सक्रिय और सम्पूर्ण योग है। शहर में रहते हुए भी ऐसे रहें मानो आप हिमालय के किसी आश्रम में रह रहे हैं। यही वास्तविक योग है।

प्रार्थना या सेवा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

प्रार्थना शक्ति और सेवा शक्ति, दोनों में कौन प्रबल है? यह प्रश्न अनेक लोग पूछते हैं। वस्तुतः दोनों ही मनुष्य की शक्ति के दो रूप और प्रकट होने के दो रास्ते हैं। प्रार्थना भक्तियोग शाखा के अन्तर्गत आती है और सेवा कर्मयोग के अन्तर्गत। फिर भक्तियोग अपनाया जाए या कर्म योग? यह दुविधा बहुतों को परेशान करती है और बहुत काल तक उन्हें यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि वे किस मार्ग का अवलम्बन करें।

सर्व साधारण की यह चिन्ता या उलझन स्वाभाविक है, किन्तु बिना साधना और गुरु के ये उलझनें शान्त नहीं होतीं। जब तक परम श्रद्धा से श्री गुरु के चरणों में न झुका जाए, यह गुत्थी पूर्णतः नहीं सुलझती। मानना या न मानना व्यक्ति पर निर्भर है, परन्तु 'नास्तिक बुद्धिजीवी' जब आस्तिक बनते हैं तो उन्हें यही अनुभव होता है। यदि यह सत्य न होता तो इतिहास प्रसिद्ध तुलसीदास ने गुरु की वंदना न की होती, मीरा ने सद्गुरु का महत्त्व न गाया होता और सूर, कबीर आदि सभी एकमत होकर गुरु तत्त्व का गुणगान न करते। और क्या ये ऐतिहासिक पुरुष हमसे और आपसे कम बुद्धिमान् और कम प्रतिभाशाली थे? यदि हम यह समझते हैं, तो यह हमारी मूढ़ता और धृष्टता के सिवा और क्या है?

अनेक साधनायें और अनेक मार्ग साधारण नए जिज्ञासु को उलझन में डाल देते हैं। जिस तरह एक छोटा बच्चा अपने लिए यह नहीं सोच सकता कि उसे क्या विषय पढ़ना और क्या नहीं पढ़ना चाहिए, कैसे रहना और कैसे नहीं रहना चाहिए, क्या खाना और क्या नहीं खाना चाहिए, वैसी ही हालत जीवन में गृहस्थों की है। धर्म, विज्ञान और विकास के नियम, ये तीनों अलग हैं ही नहीं। किसी भी धर्म में या साधना में विकास के नियमों के विरुद्ध कुछ भी नहीं बताया गया है। और इसी तत्त्व को गुरु अध्यात्म विद्या और साधना में निपुण होने के कारण अच्छी तरह समझता है। गुरु यदि पूर्ण ज्ञानी और परब्रह्म ईश्वर नहीं भी हो तो भी मानव ज्ञान अथवा विज्ञान की एक शाखा में हमसे या आपसे बहुत ज्यादा जानता है और स्थायी एवं दीर्घकालीन महत्त्व की वस्तु जानता है।

प्रार्थना और सेवा, यद्यपि ये दो अलग-अलग मार्गों की साधनायें हैं, फिर भी इनमें कोई श्रेष्ठ और कोई निम्न, ऐसा भेद नहीं है, यह आपको स्वयं अपने अनुभव से मालूम होगा। दोनों ही एक-दूसरे के पूरक और सहयोगी हैं। सूक्ष्म और स्थूल, पदार्थ और शक्ति, शिव और शिवा, ये दोनों एक-दूसरे के पूरक तत्त्व हैं।

प्रार्थना को मानसिक कर्म कहेंगे और सेवा को शारीरिक कर्म। मन और शरीर, दोनों के कर्म और गुण महत्त्वपूर्ण हैं। इसे व्यावहारिक, मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक दृष्टिकोणों से जाँचिए।

यदि कोई बीमार हो तो उसे सेवा की भी जरूरत है और प्रार्थना की भी। किन्तु प्रार्थना का बल सेवा से अधिक होता है। इसका यह मतलब नहीं लगाया जाए कि यदि कोई बीमार है या जल गया है या पानी में डूब रहा है,

तो केवल बैठकर प्रार्थना की जाए। प्रार्थना शक्ति है, किन्तु स्थूल जगत् के स्तर पर कार्यकारी होने के लिए उसे स्थूल को आधार या माध्यम बनाना पड़ता है। यदि आप बीमार की सेवा ही करते हैं, तो सेवा से उसे कुछ आराम होगा, किन्तु दिव्य सहायता प्राप्त नहीं होगी। किन्तु यदि हृदय के सम्पूर्ण भाव से निष्कपट होकर प्रार्थना की जाए, तो थोड़ी भी सेवा से रोगी शीघ्रता से आरोग्य लाभ करता है। यदि कोई डूब रहा है और आप तैरना नहीं जानते, किन्तु मन, वचन, कर्म और सम्पूर्ण भाव से उसकी रक्षा के लिए प्रार्थना कर रहे हैं तो संभव है कि कोई दूसरा व्यक्ति आकर उसे बचा ले, या वह धारा में बहकर किनारे लग जाए, या किसी अन्य प्रकार से बच जाए, जिसे भगवत्कृपा कहेंगे। फल आपको तत्काल न भी मालूम पड़े, परन्तु ऐसी घटनाओं का अनुभव अवश्य होता है। प्रकृति अपनी सूक्ष्म-शक्तियों का संकेत देती है, पर मनुष्य समझता नहीं और न प्रयोग में लाने के लिए तत्पर होता है। गिने-चुने ही उन्हें पकड़ते हैं और प्रयोग का उपाय ढूँढकर दुनिया को कुछ दे जाते हैं। एडिसन, मारकोनी, बेल इत्यादि ने सूक्ष्म शक्तियों की खोज की और जो ज्ञान उपलब्ध हुआ उसका जनहित में उपयोग किया। छिपी हुई शक्तियाँ ही जब बुद्धि की सीमा के अन्दर आ जाती हैं और उनके जनहित में उपयोग का रास्ता निकाल लिया जाता है, तो उसे हम आविष्कार कहते हैं।

प्रार्थना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी कीजिए। मन में अनेक भाव, अनेक विचार, अनेक विषय, अनेक प्रभाव उलझे हुए धागों के बण्डल के समान हैं। मन की सारी शक्ति इसी में उलझी हुई है। इसलिए हमारा मन अत्यन्त शक्तिशाली होने पर भी अपनी दुर्बलताओं का शिकार है। संशय, सन्देह, अविश्वास, हीनता, भय, लज्जा, आलस्य, इत्यादि जो भाव हैं, वे ही जोंक के समान मन की शक्ति का ह्रास करते रहते हैं। यदि इन्हें समाप्त कर दिया जाए या किसी प्रकार मन पर इनकी छाप न पड़ने दी जाए तो मनुष्य अद्भुत काम कर सकता है। मन की संकल्प शक्ति बहुत अमूल्य और विचित्र है। यदि आपने कभी हृदय से प्रार्थना की होगी तो यह अनुभव किया होगा कि प्रभु के सामने, अपने इष्ट के समक्ष सच्ची प्रार्थना करने से हृदय के अन्य भाव बर्फ के समान गलकर बह जाते हैं और कोई एक मुख्य भाव ही रह जाता है। कुछ देर के लिए दूसरे सब प्रभाव मिट जाते हैं। मनुष्य के मन की सारी वृत्तियाँ सिमटकर एकाग्र हो जाती हैं। एकाग्र भाव ही महत्त्वपूर्ण है, यही लक्ष्य को भेदने वाली तीर की पैनी नोक है।

संकट के समय प्रार्थना बड़ी मदद देती है। जब हर ओर के भौतिक उपायों से निराश होकर मनुष्य प्रार्थना का सहारा लेता है तो उसे बड़ा बल प्राप्त होता है। ऐसे समय और स्थान में जहाँ संकट पड़ने पर और कोई उपाय मनुष्य को नहीं सूझता, तो वह प्रार्थना करता है और आर्त पुकार के प्रत्युत्तर में सहायता जरूर मिलती है। यदि मनुष्य की संकल्प शक्ति कहीं से विचलित न हो, तो उसमें अनन्य क्रियात्मक बल छिपा होता है। यह एक दैवी नियम है जिसे जानकर ही उपयोग में लाया जा सकता है।

मन और शरीर का सम्बन्ध अकाट्य और अपरित्याज्य है। इन दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। अविकसित मनुष्यों में शरीर मन को प्रभावित करता है और विकसित मनुष्यों का मन शरीर को प्रभावित करता है। और योगी दोनों के उचित मूल्य को समझकर दोनों से परे रह कर, दोनों से भरपूर और यथायोग्य कर्म का आवाहन करता है। मन की संकल्प शक्ति का योगी को ज्ञान होता है और संकल्प के बल पर वह अनेक कार्य करता तथा कराता है। प्रार्थना मन के विभाग की चीज है और सेवा शरीर के, किन्तु साधारण गृहस्थ को इन दोनों का समन्वय करना चाहिए। ये बौद्धिक पचड़े हैं, जिनमें पड़ने से लाभ तो कुछ नहीं, बल्कि मानसिक शक्ति का अपव्यय ही होता है। इसके बदले यदि दिन-प्रतिदिन निष्काम और निःस्वार्थ प्रार्थनाएँ की जाएँ एवं सेवा और सहायता में अपनी मनःशक्ति और कर्म शक्ति का सदुपयोग किया जाए, तो अपने कर्म भी सुधरते हैं और दूसरों का भला भी होता है।

योग की परिणति – सेवा, प्रेम एवं दान

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने योग के अतिरिक्त एक और विद्या प्रदान की है। हमारे गुरुजी और हमारे परमगुरु, श्री स्वामी शिवानन्द जी मानते थे कि जीवन में दो अवस्थायें होती हैं। एक अवस्था है सीखने की, अनुभव प्राप्त करने की, और दूसरी अवस्था है उन सीखों और अनुभवों को अभिव्यक्त करने के लिये। जो योग साधना है वह शिक्षा है, अनुभव को प्राप्त करने की विधि है, जिससे हम अपनी प्रतिभाओं को जागृत करते हैं, अपने जीवन में परिवर्तन लाते हैं, अपने जीवन की शक्ति, सामर्थ्य और ऊर्जा की वृद्धि होती है। यहाँ तक हमने योग साधना से प्राप्त किया, और जो प्राप्त किया है, उसका वितरण अब कर्मों की अभिव्यक्ति द्वारा होना है। कर्मों की जब अभिव्यक्ति होती है तो उसके लिये अपनी मनोवृत्तियों को थोड़ा-सा व्यवस्थित करना जरूरी होता है।

साधना के बल पर जिस प्रतिभा और रचनात्मकता को हमने प्राप्त किया है, अब हमारे परिवार और कार्यक्षेत्र में उसकी अभिव्यक्ति होनी है। इसके लिए हमें तीन अवस्थाओं या भावनाओं को अपने मन में साथ लेकर चलना पड़ता है। पहली है सेवा की भावना, दूसरी है प्रेम की भावना और तीसरी है दान की भावना। ये तीनों मनुष्य के जीवन में सकारात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम बनते हैं।

सेवा का सम्बन्ध तो कर्म से ही होता है। लेकिन जब कर्म हम अपने लिये, अपनी संतुष्टि के लिये करते हैं तब वह कर्म सकाम होता है। उससे हमें ही सुख मिल रहा है। तब फिर वह कर्म बंधन का कारण भी बनता है। मनुष्य के दृष्टिकोण को, विचारों को वह कर्म सीमित कर देता है और जब वे सीमित हो जाते हैं तब फिर वह व्यक्ति अपनी ही वृत्तियों से घिरा हुआ और स्वार्थी दिखलाई देता है। मुझे और चाहिये, मुझे और चाहिये, मुझे और चाहिये, उसकी सभी वृत्तियाँ स्वार्थ से युक्त होती हैं और निन्यानवे का चक्कर हमेशा बना रहता है। निन्यानवे में भी संतुष्टि नहीं, एक और चाहिये। यही जीवन में संघर्ष का कारण हो जाता है।

स्वार्थ जीवन में हमेशा संघर्ष करवाता है और मनुष्य को संसार में बांधते जाता है। लेकिन जब आप अपनी वृत्तियों को बदलकर कर्म करते हो तो वह

अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरों के हित के लिये, दूसरों के चेहरे पर हर्ष देखने के लिये होता है। तब भी वह कर्म ही होता है, लेकिन बंधन का कारण नहीं होता और उससे दूसरों को सुख मिलता है। जिस कर्म से दूसरों को सुख मिले वह निष्काम कर्म होता है, और जिस कर्म से हमें सुख मिले वह स्वार्थयुक्त कर्म होता है। स्वार्थ का मतलब ही होता है अपने लिये किया गया कार्य, जबकि निःस्वार्थ का मतलब होता है दूसरों के लिये किया गया कार्य। यही अन्तर है। स्वार्थ से युक्त कर्म बंधन का कारण बनता है और निःस्वार्थ की भावना से जुड़ा हुआ कर्म सुख का कारण बनता है। सेवा का मतलब है मन की एक ऐसी भावना जिसमें स्वार्थयुक्त वृत्तियों को निःस्वार्थ वृत्तियों में बदलने का प्रयास होता है। सेवा में भाव बदल जाता है।

इसी प्रकार से दूसरी भावना है प्रेम। प्रेम अगर वास्तविक प्रेम है तो उसमें न कोई व्यक्ति भूखा रहता है, न दरिद्र। माँ को देख लो। माँ अपने संतान से प्रेम करती है। जब बेटे को भूख लगती है तो माँ अपनी रोटी भी बेटे को खिला देती है। बलिदान करके, त्याग करके अपनी रोटी बेटे को खिलाती है ताकि बेटा भूखा न रहे। जहाँ पर प्रेम है वहाँ पर भूख कभी नहीं। जहाँ पर प्रेम है वहाँ पर दरिद्रता कभी नहीं। अगर आपका बेटा धन के अभाव में आपके पास आता है और आप उससे प्रेम करते हैं तो आप उसे पैसा दे देते हैं। लेकिन जिससे आपको प्रेम नहीं है अगर वह अभाव में भी आयेगा तो आप उसे एक फूटी कौड़ी तक नहीं दोगे। प्रेम मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़ता है, मनुष्य को मनुष्य की आवश्यकता के प्रति संवेदनशील बनाता है और उस आवश्यकता की पूर्ति हेतु आपको कुछ करने के लिये प्रेरित करता है।

इसलिये जो शुद्ध प्रेम है उसमें न दरिद्रता है, न भूख। उसमें सभी अभाव पूर्ण हो जाते हैं, कोई कमी नहीं रहती। यह भी एक भावना है, सात्त्विक वृत्ति है कि हम अपने मन के भीतर प्रेम की संवेदनशीलता को जागृत करें ताकि दूसरों के दुःखों को समझ पायें और उनके निवारण के लिये भले ही सौ प्रतिशत न कर पायें, पर फिर भी कम-से-कम एक प्रतिशत प्रयास तो अवश्य कर सकते हैं।

उसके बाद जो तीसरी भावना है देने की, वह हमेशा सहायता के लिए तत्पर रहने की भावना है। देने का मतलब यह नहीं कि हम अपनी जेब खाली कर दें। देने का मतलब है कि अगर किसी व्यक्ति को हमारी सहायता की आवश्यकता हो, तो हम कभी उसमें पीछे नहीं रहें, बल्कि हमेशा सहायता के लिये आगे रहें, तत्पर रहें और यथासम्भव सहायता के लिए प्रयास करें।

योग की जो प्राप्ति है वह सेवा, प्रेम और दान में अभिव्यक्त होनी चाहिये। अगर आप समाधि को प्राप्त कर भी लोगे और ईश्वर के सामने जाओगे तो वे कहेंगे, 'बेटा, तुम मेरे पास नहीं आ सकते हो क्योंकि तुमने अपने सुख के लिये समाधि प्राप्त की है। अब तुम वापस जाओ और दूसरों के जीवन के दुःखों को दूर करने का प्रयास करो। जिस दिन तुम दूसरों के जीवन के दुःखों को दूर कर पाओगे और फिर मेरे सामने आओगे तब मैं तुम्हें अपने बगल में बैठाऊँगा।' यह ईश्वर का वाक्य रहेगा, उस योगी, उस व्यक्ति के लिये जिसने ध्यान करके समाधि को प्राप्त किया है, पर समाज के लिये एक अंश भी योगदान नहीं दिया है।

आखिर समाधि भी तो स्वार्थ की भावना से प्रेरित होती है। हम समाधि प्राप्त करेंगे, यह तो हमारा स्वार्थ है। हमने समाधि प्राप्त की पर उससे समाज का क्या फायदा? अगर हमने कुछ अच्छाई को प्राप्त किया है तो उस अच्छाई का वितरण भी तो बाहर होना चाहिये। जैसे बेटे का जन्म होता है तो लड्डू बाँटते हैं। अगर ईश्वर का अनुभव अपने भीतर होता है तो क्या उस समय हम चुप-चाप अपने कमरे में आँखें बंद करके बैठे रहेंगे या बाहर आकर उस प्रसाद को, उस आनन्द को समाज में बाँटेंगे? यह हमलोगों का दर्शन है और यही शिक्षा हमारी परम्परा की है जिसकी शुरुआत होती है स्वामी शिवानन्द जी से। वही धारा आज प्रवाहित हो रही है स्वामी सत्यानन्द जी की शिक्षाओं से और इसी संदेश को जन-जन तक लाने का हमारा प्रयोजन है।

दान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सूचना

आश्रम के लिए दान राशि केवल निम्नलिखित श्रेणियों के अन्तर्गत स्वीकार की जाएगी –

1. **सामान्य दान**
   जो बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन को दिया जा सकता है और जिसका उपयोग यौगिक गतिविधियों के विकास एवं संवर्द्धन के लिए किया जाएगा।

2. **मूलधन निधि के लिए दान**
   बिहार स्कूल ऑफ योग, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट अथवा योग रिसर्च फाउण्डेशन की मूलधन निधि के लिए। **मूलधन निधि** से प्राप्त ब्याज राशि का उपयोग संस्था/न्यास की सभी गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

3. **सी.एस.आर. दान**
   जिसका उपयोग सी.एस.आर. गतिविधियों के लिए किया जाएगा।

इसलिए भक्तों से निवेदन है कि वे केवल उपर्युक्त श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी दान राशि भेजें।

बिहार स्कूल ऑफ योग को दान 'SB Collect Online Donation Facility' के माध्यम से निम्नलिखित वेबसाइट द्वारा सीधे दिया जा सकता है – **https://www.onlinesbi.sbi/sbicollect/icollecthome.htm?corpID=2277965**

आप चेक, डी.डी. अथवा ई.एम.ओ. द्वारा भी दान दे सकते हैं जो **बिहार स्कूल ऑफ योग**, **बिहार योग भारती**, **योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट** या **योग रिसर्च फाउण्डेशन** के नाम से हो और मुंगेर में देय हो।

दान राशि के साथ एक पत्र संलग्न रहे जिसमें आपके दान का प्रयोजन, डाक पता, फोन नम्बर, ई-मेल और PAN नम्बर स्पष्ट हों।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

सत्यम् वाणी – कर्म योग

पृष्ठ 174, ISBN: 978-93-94604-04-9

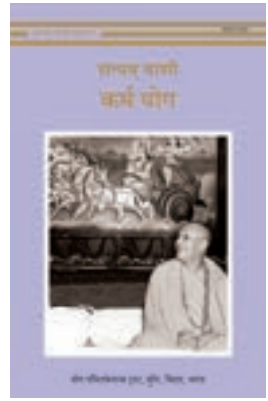

उपलब्ध

जो मनुष्य संसार में रहकर सब कुछ करता है, किन्तु संसार से कोई आशा नहीं रखता, ऐसा व्यक्ति कर्मयोगी है।

इस पुस्तक में श्री स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा सन् 1950 से 1980 के दशकों के बीच दिये गये कर्मयोग विषयक सत्संगों का संकलन है। श्री स्वामीजी की जन्म शताब्दी के उपलक्ष्य में पुस्तक रूप में प्रथम बार प्रकाशित ये सत्संग कर्मयोग के दार्शनिक और व्यावहारिक पक्षों को अत्यंत सरल, सुबोध ढंग से उजागर करते हुए, सभी साधकों को इस परम कल्याणकारी योग को आत्मसात् करने के लिए प्रेरित करते हैं।

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 9162783904, 9835892831

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा के समस्त ऑडियो, वीडियो तथा पुस्तक प्रकाशन प्रसाद रूप में *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए) एवं कार्यक्रम

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं
- स्वस्थ जीवन हेतु *biharyoga.net* तथा *satyamyogaprasad.net* पर *यौगिक जीवनशैली साधना* का कार्यक्रम उपलब्ध है

• Registered with the Registrar of Newspapers, India Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2025

बिहार योग विद्यालय योगविद्या प्रशिक्षण

जनवरी–दिसम्बर	*आश्रम जीवन प्रशिक्षण*
फरवरी 8–14	*पूर्ण स्वास्थ्य कैप्सूल (हिन्दी)*
मार्च 3–9	*प्राणायाम – स्वस्थ जीवन के लिए श्वसन प्रशिक्षण (हिन्दी)*
मार्च 22–28	*प्रत्याहार एवं धारणा प्रशिक्षण*
सितम्बर 22–30	*राज योग एवं भक्ति योग प्रशिक्षण*
अक्टूबर 3–11	*हठ योग एवं कर्म योग प्रशिक्षण*
नवम्बर 1–15	*प्रगतिशील योग विद्या प्रशिक्षण*
नवम्बर 16–जनवरी 30 2026	*संन्यास अनुभव (राष्ट्रीय/अन्तरराष्ट्रीय साधकों के लिए)*

बिहार योग भारती योगविद्या प्रशिक्षण

नवम्बर 1–दिसम्बर 31	*द्विमासिक यौगिक अध्ययन (अंग्रेजी)*

कार्यक्रम

जनवरी 28– फरवरी 2	*बसंत पंचमी महोत्सव तथा बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस*
जून 25–जुलाई 9	*वेद पारायण*

मासिक कार्यक्रम

प्रत्येक शनिवार	*महामृत्युंजय हवन*
प्रत्येक 4, 5 एवं 6 तारीख	*गुरु भक्ति योग*
प्रत्येक 12 तारीख	*अखण्ड रामचरितमानस पाठ*